लेखक की अन्य कृतियाँ

समीक्षा :

'हिन्दी कविता का क्रान्ति-युग

'जायसी : एक समीक्षा'

कविता :

'शंखनाद'

'जौहर'

'प्रलय-वीणा'

'अमृतलेखा'

नाटक :

'राम-रहमान' (एकांकी)

प्रकाशक :
गर्ग बुक कम्पनी
जयपुर

मुद्रक :
बा० ओंकारदयाल गर्ग
गर्ग प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर

प्रस्तावना

विद्यापीठ में बी. ए. की छात्राओं को केशवदास की प्रधान कृति 'रामचन्द्रिका' पढ़ाने में मैंने जिस रीति से उसका अध्ययन-अनुशीलन कराने का प्रयत्न किया—प्रस्तुत समीक्षा उसीका फल है। 'उत्तमा' (साहित्यरत्न) आदि हिन्दी की दूसरी परीक्षाओं में भी केशव की कृतियों का अध्ययन निर्धारित है अतः उनके परीक्षार्थियों के लिए भी यह पुस्तक उपयोगी और उपयुक्त होगी, यह विश्वास है।

यदि इसके पाठकों को यह समीक्षा सुपाच्य प्रमाणित हुई तो सूर, तुलसी, कबीर, मीरा आदि अन्य कवियों के अध्ययन भी प्रस्तुत करने में मुझे प्रसन्नता होगी। 'जायसी' के 'पद्मावत' की समीक्षा तो शीघ्र ही प्रकाशित होगी।

वनस्थली विद्यापीठ,
वनस्थली

—सुधींद्र।

विषय-सूची

जागति जाकी ज्योति जग एक रूप स्वच्छन्द ।
रामचन्द्र की चन्द्रिका वर्णत हौं वहु छन्द ॥

केशवदास एक विद्या-बुद्धि-सम्पन्न सनाढ्य परिवार में उत्पन्न हुए थे। 'रामचन्द्रिका' काव्य के अन्तर्साक्ष्य के अनुसार उन्हें अपनी जाति पर गर्व भी था—

सनाढ्य जाति गुनाढ्य है जग सिद्ध शुद्ध सुभाव। (रा॰ च॰)

अनेक निकटतम पूर्वजों के नाम हैं कृष्णदत्त (पितामह) और काशीनाथ मिश्र (पिता)—

सुकृष्णदत्त प्रसिद्ध हैं महि मिश्र पण्डितराव ।
गणेश सो सुत पाइयो बुध काशिनाथ अगाध ।
अशेष शास्त्र विचार के जिन जानियो मत साथ ॥

केशवदास के पितामह (कृष्णदत्त) राजा मधुकर शाह के राजत्व-काल में ओड़छा आकर बस गये थे। उनके पुत्र काशीनाथ मिश्र अनेक शास्त्रों के ज्ञाता थे—(अशेष शास्त्र विचारि के जिन जानियो मत साध) इन्हीं काशीनाथ के तीन पुत्र थे—बलभद्र, केशवदास और कल्याणदास। केशव के अग्रज बलभद्र मिश्र के सम्बन्ध में इतना ही विदित है कि वे 'नखशिख' नामक शास्त्रीय-ग्रन्थ के प्रणेता थे। केशव के अनुज भी कुछ स्फुट रचनाओं के रचयिता कहे जाते हैं और केशवदास ने तो हिन्दी साहित्य में अपनी कृतियों द्वारा अमिट स्थान अर्जित किया है।

(१) भूतल को इन्द्र इन्द्रजीत राजै जुग जुग,
केशोदास जाके राज राज सों करत है। (कविप्रिया: १-२१)

राजा इन्द्रजीत राजकवि केशव पर जितने कृपालु थे उतने ही केशव भी उनके प्रति श्रद्धालु और कृतज्ञ रहे। एक बार (इन्द्रजीत के भाई वीरसिंह देव ने अकबर के प्रिय मित्र अबुलफजल को मार डाला तो ?) सम्राट ने उनपर एक करोड़का जुर्माना कर दिया। तब केशवदास दिल्ली गये और अपने मित्र बीरबल की सहायता से जुर्माना क्षमा कराने में सफल हुए। इन्द्रजीतसिंह से केशवदास को २२ गाँवों की जागीर मिली थी। झांसी के निकट फुलेरा गाँव केशवदास के वंशजों के पास अब तक है। इन्हीं इन्द्रजीतसिंह की इच्छा से केशव ने 'रसिक-प्रिया' का प्रणयन किया और उनके दरबार की एक प्रतिभाशालिनी वेश्या प्रवीणराय के लिए 'कविप्रिया' का।

जहाँगीर के राजत्वकाल में (१६०५) ओड़छा के राजा इन्द्रसिंह के भाई और जहाँगीर के कृपापात्र वीरसिंह हुए। इनसे भी केशव को वही प्रतिष्ठा मिली और उनकी प्रशस्ति में उन्होंने 'वीरसिंह देवचरित' लिखा और सम्राट जहाँगीर की स्तुति में 'जहाँगीर जस चन्द्रिका'। राजाश्रय में रहकर प्रशस्ति काव्य परम्परा के द्वितीय उत्थान का यह श्रीगणेश था।

जीवन के किन्हीं संकटमय क्षणों में केशव अध्यात्म तथा दर्शन की ओर भी प्रवृत्त हुए उन्होंने 'विज्ञान-गीता' की रचना की और वैराग्य प्रधान ज्ञान को कविता का विषय बनाया।

—केशव के ग्रन्थ—

केशव के ७ ग्रन्थ प्रख्यात हैं—कविप्रिया, रसिक-प्रिया, रामचन्द्रिका, वीरसिंह देवचरित, जहाँगीरजस-चन्द्रिका, विज्ञान-

गीता और बावनी। कुछ लोग रामालंकृत मंजरी, नखशिख छन्दशास्त्र को भी इनकी कृतियाँ मानते हैं इनका विभाज प्रकार होगा:—

रीति-काव्य

१. रसिकप्रिया:—रसिक प्रिया और कविप्रिया केशव के शास्त्र के ग्रन्थ हैं। संस्कृत ग्रन्थों के आधार पर केशव ने रचना की है। 'रसिक-प्रिया' रस और भावशास्त्र का ग्र केशव की दृष्टि में शृंगार रस प्रधान रस है और अन्य रस अंगभूत। अन्य रसों का स्थूल अनुशीलन करते हुए के उनका समावेश शृङ्गार में ही कर दिया है। शृङ्गार रस अन्तर्गत नायक नायिका भेद, हावभाव आदि रस के का वर्णन है। आचार्यत्व की दृष्टि से 'रसिक-प्रिया' क शून्य नहीं क्योंकि उसमें विषय का अन्य प्रतिपादन शास्त्रों पर आधारित है; फिर भी काव्य की दृष्टि से उसक समाज में पर्याप्त आदर है।

२. कवि-प्रिया—'कविप्रिया' में काव्य-शिक्षा और अ शास्त्र का अनुशीलन है। इसका आधार दंडी का 'काव है। 'काव्यादर्श' में अलंकार का स्थान प्रधान मान आचार्य और कवि हैं—

जदपि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषन बिनु न बिराजई कविता बनिता मित्त।

कुवलयानन्द वृत्ति' और केशव मिश्र कृत 'अलंकार शेखर' से उदाहरण लिये गये हैं। रीतियुग के लक्षण ग्रन्थों की परम्परा केशव के मार्ग पर नहीं चली। उनको 'रस-शास्त्र' 'काव्य-प्रकाश' और 'साहित्य-दर्पण' का अनुयायी रहा और 'अलंकार-शास्त्र' 'चन्द्रालोक' और कुवलयानन्द का। इसी कारण केशव के अलंकार-लक्षण हिन्दी में प्रचलित अलंकार-लक्षणों से भिन्न हैं।

३. नख-शिख—में नायिका का नखशिख वर्णन है जैसा कि नाम से विदित है।

कहते हैं कि केशव ने पिंगल पर भी ग्रन्थ (छन्दशास्त्र) लिखा था। उनके नाम से प्रसिद्ध 'रामालंकृत मंजरी' जो अभी अप्राप्य है सम्भव है पिंगल ग्रन्थ ही हो।

इस प्रकार आचार्य केशवदास ने काव्य शास्त्र के रस, अलंकार नखशिख, पिंगल इत्यादि अंगों का सांगोपांग अनुशीलन करने का द्वार खोला। यद्यपि रस-अलंकार आदि काव्यांगों का निरूपण कृपाराम*, मोहनलाल†, करनेस आदि केशव के पूर्ववर्ती कवि कर चुके थे और रसनिरूपण और अलंकारनिरूपण का हिन्दी में सूत्रपात हो चुका था परन्तु अभी तक किसी कवि ने संस्कृत काव्य-शास्त्र में निरूपित काव्यांगों का सर्वांगीण अनुशीलन नहीं कराया था। अन्यों के प्रयत्न एकांगी थे और केशवदास के सर्वांगीण। इसी से केशवदास को रीतिग्रन्थों के प्रणयन की दिशा में अग्रणी होने का श्रेय दिया जाता है।

प्रशस्तिकाव्य

'वीरसिंह देव चरित', 'रतनबावनी' और 'जहाँगीरजस-

---

*हित तरंगिणी, † शृंगार-सागर।

चंद्रिका' केशव के प्रशस्ति काव्य हैं, जिनमें क्रमशः ओरछा-नरेश वीरसिंह देव तथा इन्द्रजीतसिंह के बड़े भाई रतनसिंह, और सम्राट जहाँगीर की प्रशस्तियाँ हैं।

स्फुट

<u>विज्ञानगीता</u>—यह भारतीय दर्शन के वैराग्यमूलक ज्ञान का प्रतिपादक एक रूपक है। सम्भाषण के द्वारा इसमें गीता के तथा अन्य दार्शनिक विचारों का निरूपण है। इसका प्रणयन संस्कृत नाटक 'प्रबोध चन्द्रोदय' के आधार पर हुआ है।

प्रबन्धकाव्य

रामचन्द्रिका—केशवदास की अक्षय कीर्ति का आधार उसका प्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचन्द्रिका' है। काव्य के अन्तर्साक्ष्य के अनुसार उसका रचनाकाल १६५८ वि. (१६०१ ई.) है :

सोरह सै अट्ठानवे कातिक सुदि बुधवार।
रामचन्द्र की चन्द्रिका तब लीनों अवतार॥ (रा. च.)

बाबा बेनी माधवदास ने अपने प्रसिद्ध 'गोसाईं चरित' में (जिसे गोस्वामी तुलसीदास की जीवनी के रूप में प्रतिष्ठित किया जाता है) लिखा है कि

कवि केसव कै दरसन हित गये। रहि बाहिर सूचन भेजि दये।
सुनि कै जु गुसाइं कही इतनो। कवि प्राकृत केसव आवन दो।
फिरिगे भट केसव सो सुनि कै। निज तुच्छता आपुहि ते गुनि कै।
जब सेवक टेरेउ फिरि कै। हौं भेंटिहौं काल्हि विनय गहि कै।

कौशल विलक्षण था। स्वयं केशवदास ने 'रामचन्द्रिका' में ग्रन्थ-रचना का कारण वाल्मीकि द्वारा स्वप्न-प्रेरणा बतलाया है—

बालमीकि मुनि स्वप्न मँह दीन्हों दर्शन चारु।
केशव तिनसों यों कह्यों क्यों पाऊं सुख सारु?

मुनिने वे उत्तर दिया:—'सीधी, री, धी,

राम नाम सत्य धाम। और नाम को न काम॥

केशव के पूछने पर कि 'दुख क्यों टरि है' मुनि ने उत्तर दिया 'हरि जू हरि है' और प्रकाश दिया कि

धरणियो बरण सो
जगत को सरण सो—

—हरि का महात्म्य वर्णों में वर्णन करने योग्य नहीं है तथापि उसे अक्षरों द्वारा वर्णन करेंगे वाल्मीकि के—

'न रामदेव गाइ है। न देवलोक पाइ है'

का आदेश पाकर केशवदास ने रामचन्द्र को इष्ट माना—

मुनिपति यह उपदेश दै जबही भये अदृष्ट।
केशवदास तहीं करथो रामचन्द्र जू इष्ट॥

और रामचन्द्र की चन्द्रिका का वर्णन करने का संकल्प किया:

जिनको यश हंसा जगत प्रशंसा मुनिजन मानस रंता।
लोचन अनुरूपिनि श्याम सरूपिनि अंजन अंजित संता।
कालत्रय दरशी निर्गुण परशी होत विलम्ब न लागै।
तिनके गुण कहि हौं सब सुख लहि हौं पाप पुरातन भागै।
(रा० च: १-२०)

'रामचन्द्रिका' राम की विधिवत जीवनी नहीं है। स्वयं कवि के शब्दों में वह केवल 'रामचन्द्र की चन्द्रिका' है—

जागति जाकी ज्योति जग एक रूप स्वच्छन्द ।
रामचन्द्र की चन्द्रिका वर्णत हौं बहुछन्द ॥

अनेक प्रकार के छन्दों में यह तो रामचन्द्र की (कीर्ति) चंद्रिका का वर्णन है; इसलिए 'रामचन्द्रिका' को प्रबन्ध अर्थात् कथा काव्य की कसौटी पर कसते समय केशव के शब्द उनकी रक्षा कर सकेंगे।

रामचन्द्र की चन्द्रिका का वर्णनमात्र होते हुए भी 'रामचंद्रिका' को विशाल प्रबन्ध काव्य कहा है। आलोचकों ने 'रामचन्द्रिका' को महाकाव्य माना है और केशव ने भी इसकी रचना प्रचलित महाकाव्यों की शैली में ही की है। 'हिन्दी शब्दसागर' के अनुसार 'महाकाव्य सर्गबद्ध और उसका नायक कोई देवता, राजा या धीरोदात्त गुण संपन्न क्षत्रिय होना चाहिए। उसमें शृंगार, वीर या शान्त रसों में से कोई रस प्रधान होना चाहिए। बीच-बीच में करुण, हास्य इत्यादि और और रस तथा और और लोगों के प्रसंग भी आने चाहिए। कम से कम आठ सर्ग होने चाहिए। महाकाव्य में संध्या, सूर्य, चन्द्र, रात्रि, प्रभात, मृगया, पर्वत, वन, ऋतु, सागर, संभोग, विप्रलंभ, मुनि, पुर, यज्ञ, रण, प्रयाण, विवाह आदि का यथास्थान सन्निवेश होना चाहिए।"

महाकाव्य की परिभाषा

(४) संसार और प्रकृति के दृश्यों और रूपों का वाह्य रूप-चित्रण।

वस्तुतः महाकाव्य मूलतः प्रबन्धकाव्य होता है। काव्यमात्र यों तो जीवनस्पर्शी होताही है, परन्तु महाकाव्य मानवजीवनका सर्वांगीण और समग्र चित्रण होता है। छोटे या खंड-काव्य में मानव जीवन का एक खंड-चित्र, खंड-प्रसंग, अंश-झलक या घटना ही वर्णित होती है। दूसरे शब्दों में—लघुकाव्य या खंड काव्य एक झलक है महाकाव्य सम्पूर्ण चित्र, खंड काव्य वर्णन है, महाकाव्य चित्रण। इसी विस्तार के आग्रह से आठ सर्ग का विधान है। कवि का उद्देश्य ऐसे नायक के जीवन का सर्वांगीण चित्रण होना चाहिए जो महान् हो और इसी महान्ता को देवता, राजा, मंत्री या उच्चपदस्थ ब्राह्मण में अधिष्ठित माना गया है।

महाकाव्यत्व की उक्त कसौटी पर 'रामचन्द्रिका' अशतः शुद्ध महाकाव्य ठहरती है। 'रामचन्द्रिका' में महाकाव्यत्व के स्थूल, बाह्य और शलीगत गुण अवश्य हैं। नायकत्व राम के साथ जितना उचित है उतना और किसी के साथ नहीं हो सकता। फिर, राज्य, यज्ञ, स्वयम्वर, विवाह, सेना-प्रयाण, युद्ध, मिलन, वियोग, मरण आदि जीवन के प्रधान कार्य तथा नगर, उपवन, सरिता, जलाशय, प्रभात, सन्ध्या, वर्षा, शरद्, सूर्य, चन्द्र, राजमहल, राजपथ, संगीत, ज्ञान, दर्शन आदि सांसारिक पदार्थों का वर्णन भी 'रामचन्द्रिका' में है। नायक रामचन्द्र उदात्त और धीर-वीर दोनों हैं। वे देवतारूप, राजा तथा क्षत्रिय भी हैं और सब प्रकार के नायकोचित गुणों का समन्वय उनमें है। जीवन-कथा जन्म और शैशव से लेकर राजतिलक, अश्वमेध-यज्ञ, राम-सीता-मिलन-राज्यवितरण आदि तक होने के कारण विस्तीर्ण भी है।

परन्तु महाकाव्य की प्रमुख विशेषता है उसका प्रबन्धबद्ध होना। यह उसकी बाह्य विशेषता है—'रूप' की और उसकी आन्तरिक विशेषता है उसका जीवनव्यापी चित्रण। यह विशेषता उसके 'रंग' की है। बाह्य विशेषता—प्रबन्धबद्धता—के कारण ही गीतिकाव्य महाकाव्य से पृथक् होता है अन्यथा 'सूरसागर' भी महाकाव्य होता। प्रबन्ध का यह अर्थ है कि काव्य में वस्तु की शृंखला अविच्छिन्न होनी चाहिए। यों तो गीतिकाव्य (जैसे गीतावली और सूरसागर और मुक्तककाव्य) जैसे कवितावली और 'उद्धव शतक' में भी कथावस्तु की प्रतीति हो ही जाती है परन्तु उस कथावस्तु को अविच्छिन्न और सुशृंखलित नहीं कहा जा सकता। 'रामचन्द्रिका' में कथा-क्रम का अभाव नहीं, परन्तु वह सुबद्ध और सुगठित नहीं है। उसकी शृंखला अनेक स्थानों पर टूटी और बिखरी हुई जान पड़ती है। 'रामचन्द्रिका' में प्रबन्ध की धारा है परन्तु मरुभूमि में बहनेवाली सरिता की भाँति कहीं गुप्त और अदृश्य हो जाती है और कहीं प्रकट हो जाती है। 'रामचन्द्रिका' की कथावस्तु में हमें निम्न लिखित अभाव मिलते हैं :—

(क) संगीत तथा क्रम का अभाव

'रामचन्द्रिका' के चित्रों को देखने से एक ऐसे चित्रकार की [illegible] है जिसे कुछ विशेष वस्तुओं में रंग भरना आता है और [illegible] सांगोपांग अंकित करने में [illegible] है किन्तु अनेक [illegible] नहीं हैं या उनके रंग [illegible] और [illegible] हैं। रामकथा को केशव ने [illegible] किया। [illegible] जीवन और [illegible] के इस [illegible] नहीं किया [illegible] एक सन्यासी [illegible] [illegible]

किया है। केशव की चन्द्रिका का पहला प्रकाश अयोध्या नगरी और दशरथ के राज्य के वैभव और गुणों के वर्णन पर पड़ता है। केशवदास राजाश्रित कवि थे; राजसी वैभव उनका अनुभूत विषय था और रघुवंश जैसे संस्कृत महाकाव्य उनके आदर्श थे। उनकी प्रतिभा उस वर्णन में हतप्रभ नहीं होती। जीवन के राजसी पक्ष के वे कुशल चित्रकार हैं। पहला प्रकाश सरयू, हाथीं, उपवन, नगर, नागरिकों आदि के वर्णन से मुखर है।

दूसरे प्रकाश में भी अधिकांश इसी वर्णन का साम्राज्य है। मुनि विश्वामित्र का दशरथ की राजसभा में आगमन, राजा से 'वचन रचना' और राघव का तपोवन प्रयाण है। राजसभा के सभासदों के उल्लेख के उपरान्त केशव राजसी केलि-क्रीड़ा देखने भटक जाते हैं।

महिष, मेष, मृग, वृषभ कहुँ, भिरत मल्ल गजराज।
लरत कहूँ पायक सुभट कहुँ नर्तन नटराज॥

जिसे सम्भवतः केशव नगर के प्रसंग में भूल गये थे। अस्तु हम उन्हें पुनः राजसभा में प्रविष्ट पाते हैं—

राजमण्डलि लसैं देवलोक को हँसैं
देश देश नरेश सोभिजैं सबै सुदेश

परन्तु यह सब सम्भवतः विश्वामित्र ने दिव्य दृष्टि से ही देखा होगा क्योंकि अभी उन्होंने सभा में शरीर-प्रवेश नहीं किया है—

देखि तिन्हें तब दूरिते गुदरानो प्रतिहार।
आए विश्वामित्रजी जनु दूजो करतार॥

ऐसी ही एक असंगति तीसरे प्रकाश में है। विश्वामित्र के साथ तपोवन में जाने पर राम तपोवन-रक्षा के लिए बैठते हैं और

काहु कहूँ सर आसुर मार्‌यो।
आरत शब्द अकास पुकार्‌यो॥
रावण के यह कान परथो जव।
छोड़ि स्वयम्वर जातभयो तव॥ (४.३०)

इस भूमिका से ही अंगद-रावण-संवाद में अंगद के इस कथन का परीक्षण कीजिए—

'वाण समेत रहे पचिके, तँह जा सँग पै न तज्यो थलु हो'

तब केशव की कल्पना की असंगति स्पष्ट हो जाती है। धनुष यज्ञ समाप्त हो गया, व्रत भंग होगया और—

'धनुष धरथो लै लै भवन में राजा जनक अनंग'

परन्तु अभी ब्राह्मण की कथा चल रही है—कि तब कोई त्रिकाल-दर्शी ऋषि पत्नी आई जिसके हाथ में एक सुन्दर राजकुमार का चित्र था सीता के वर के रूप में—

'लिखि लाई सिय को वरु ऐसो, राजकुमारहिं देखिये जैसो'

इसी दैवी संकेत ने विश्वामित्र को स्फूर्ति दी और वे 'सुखपाय चले मिथिला हि तहीं'। दूसरे ही क्षण राम ने शिला को देखकर सुन्दर स्त्री बना दिया!

वन राम शिला दरसी जब हीं।
तिय सुन्दर रूप भई तब हीं।

राम, लक्ष्मण, विश्वामित्र मिथिला के लिए चल पड़े हैं। सम्भवत: रातों रात ही वे गये थे, क्योंकि—

पुर पैठत श्रीराम के भयो मित्र उद्योत।

याज्ञवल्क्य, सतानन्द आदि ऋषि-मुनियों ने राम और विश्वामित्र का अभिवादन किया। लक्ष्मण के पूछने पर कि

जनक योगी और राजा एक ही साथ कैसे हो सकते हैं ? इसका उत्तर विश्वामित्र न देकर राम देते हैं जिनका सम्भवत-जनक के सम्बन्ध में पूर्वपरिचय शून्य था—

सब छत्रिन आदि दै काहु छुईन, छुए विजनादिक बात डगै।
न घटै न बढ़ै निसि वासर केशव लोकन को तम तेज भगै।
भव भूषण भूषित होत नहीं, मदमत्त गजादि मसी न लगै।
जलहू थलहू परिपूरन श्री निमि के कुल अद्भुत ज्योति जगै।

यह उक्ति विश्वामित्र के मुँह से अधिक शोभा पा सकती थी।

रामचन्द्र का परिचय जनक से कराते समय विश्वामित्र कहते हैं—

राजराज दशरत्थ तनै जू, रामचन्द्र भुव चन्द्र बने जू।
क्यों विदेह तुमहू अरुसीता, ज्यों चकोर तनया शुभगीता।

रामचन्द्र 'भुवचन्द्र' हैं तो सीता 'चकोर तनया' यह प्रस्ताव अर्थ पूर्ण है परन्तु विश्वामित्र भूल गये कि बिना धनुष तोड़े यह प्रस्ताव सार्थक नहीं हो सकता और इसीलिए उस व्रत का पालन आवश्यक हो गया। राम ने धनुष भी तोड़ा—

रामचन्द्र कटि सों पटु बाँध्यो, लीलयैव हरको धनु साध्यो।
नेकु ताहि कर पल्लव सौं छ्वै, फूलमूल जिमि टूककरयो द्वै।

परन्तु तुलसीदास ने 'रामचरित-मानस' में देश देश-के प्रचंड शूरवीर क्षत्रियों के समारोह के बीच में रामचन्द्र का जो पौरुष और पराक्रम प्रदर्शित किया वह केशवदास अपनी इस मौलिक सूझ के कारण न कर सके। राम के पौरुष-प्रदर्शन को उनके ससुरालवालों के अतिरिक्त और किसी ने न देखा, संसार उसका साक्षी न बना और उस विश्वप्रसिद्ध व्रत का पालन चुपचाप हो गया।

दशरथ को बरात सजाकर लाने का निमन्त्रण गया है और एक नाटकीय असंगति के रूप में वे दूसरे ही क्षण बरात सजाकर आ गये हैं। विवाह के समस्त कृत्य—'बारो ठको चार, मंगल-गारी यज्ञ हवन, गीतवाद्य, ज्यौनार, पलकाचार' इत्यादि पूर्ण हो जाने पर केशव कहते हैं:

विश्वामित्र विदा भये जनक फिरे पहुँचाय।
मिले आगिली फौज को परशुराम अकुलाय॥

...जाने दशरथ का क्या हुआ? प्रसिद्ध 'राम-परशुराम संवाद' ... वामदेव, राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और अन्त में महादेव ...त्र अपना-अपना भाग लेते हैं परन्तु दशरथ की उपस्थिति को ...वदास भूल गये हैं।

अयोध्याकांड में इधर दशरथ राम को राज देने का विचार ...ते हैं और उधर भरत की माता झटपट राम को वन में भेजने का निश्चय कर लेती है, राजा से विनय करती है और दोनों वर माँग लेती है। तुलसीदास ने ऐसे मार्मिक प्रसंग में दशरथ और कैकयी दोनों के चरित्रों के उज्ज्वल और मलिन पक्ष चित्रित करते हुए अनेक रसों की धारा बहाई है। मानव स्वभाव की दुर्बलताओं की ओर संकेत किया है और पाठक को रसमग्न कर दिया है परन्तु केशवदास को यह प्रसंग आकर्षित न कर सका। इधर तो दशरथ को—

यह बात लगी उर वज्र तूल। हिय फाट्यो ज्यों जीरन दुकूल।

और उधर

उठि चले विपिन कह सुनत राम।
तजि तात मात तिय बन्धु धाम॥

केशव की यह उदासीनता और क्षिप्रता उपहासास्पद हो उठी है

परन्तु संतोष है कि राम अभी सचमुच नहीं गये हैं। अभी तो उन्हें माता को नारी धर्म और विधवा धर्म का पाठ पढ़ाना शेष है। दोनों बातें अशिष्ट, घृणास्पद और अमंगल सूचक हैं। न जाने केशव इतने हृदयहीन और निष्ठुर कैसे हो गये।

राम जानकी और लक्ष्मण से मिलकर विदा लेते हैं परन्तु दूसरे ही क्षण—

विपिन मारग राम विराजहीं

इस प्रकार केशवदास मर्मस्पर्शी स्थलों को ओझल करते हुए और आवश्यक वर्णनों और प्रसंगों, शिष्ठचारों और क्रिया-व्यापारों को अपने आलंकारिक रंगों में चित्रित करते हुए चलते हैं। औचित्य-अनौचित्य और श्लील-अश्लील का भी ध्यान छोड़ देते हैं। क्रिया-व्यापारों की कई बार संक्षिप्त सूचना प्रदान करके ही कृतार्थ कर देते हैं और कई घटनाएँ इस विश्वास पर कि राम-कथा तो रामकहानी है और सर्वविदित है, वे वर्णित ही कल्पित कर लेते हैं। इस कारण रामकथा का समग्र चित्र सांगोपांग रूप में पाठक नहीं देख पाता।

(ख) अनुपात का अभाव

'रामचन्द्रिका' के प्रथम प्रकाश में विश्वामित्र के अवधागमन के वर्णन के अन्तर्गत अयोध्या नगरी के अंग-प्रत्यंग का पूर्ण विवरण देते हैं। 'मदमत्त यदपि मातंगसंग'। अति तदपि पतित पावन तरंग वाली सरजू अंग अंग चरचे अति चन्दन, मुण्डन मुरके देखिए वन्दन, वाले हाथी, 'जग यदपि दिगम्बर पुष्पवती, नर निरखि-निरखि मन मोहे' जैसी और 'ऊँचे अवास भव धुज प्रकाश' कविकुलों, विद्यार्थियों, गणपतियों, पशुपतियों, राजराजों और गुरुआवाली अवधपुरी का वर्णन करने में वे छन्द के छन्द

लिख डालते हैं परन्तु जिन प्रसंगों में हृदय के मर्मरहस्य और ग्रन्थियों को खोलकर दिखाने का अवसर आता है वहाँ उनकी लेखनी मौन हो जाती है। कुछ ही छन्दों में केशव राम, लक्ष्मण और विश्वामित्र को तपोवन में पहुँचा देते है। जनक के राजभवनों, मण्डपों, सीता-स्वयम्वर में आए हुए राजाओं के पराक्रम, राम-सीता के विवाह में ज्यौनार, गालियों और पलकाचार के वर्णन में उनका मन अधिक रमा है, परन्तु घर से वन जाने के लिए राम की विदा जैसे मार्मिक प्रसंगों में उनकी कवि कल्पना द्रवित नहीं हुई। ऐसे करुण प्रसंग में भी केशव को नारी धर्म और विधवा-धर्म का उपदेश जड़ देना अधिक शोभनीय लगता है। केशवदास शोभा सजावट आदि के वर्णन में अत्यन्त पटु हैं। जहाँ-जहाँ ऐसे अवसर होते हैं वे छन्द के छन्द व्यय कर देते हैं। अयोध्या-वर्णन एक बार (प्रथम-द्वितीय प्रकाश में) कर चुकने के उपरान्त भी केशव का मन नहीं भरा और राम–सीता के जनक-पुरी से लौटने पर अवधपुरी के प्रवेश के समय वे पुनः अयोध्या का वर्णन करने लगे। मङ्गलाचरण, पताकाएँ, व्योम-विमान, कलभ-क्रीड़ा, दुर्गद्वार, सेना, राज-रथ, घण्टा-ध्वनि, ध्वज–सज्जा, स्त्रियों की सुन्दरता और केलि–क्रीड़ामें पूरा प्रकाश लगा। इसी प्रकार केशवदास पुत्र-धर्म नारी-धर्म और राज-धर्म के उपदेश देने में उचित अनुचित अवसरों की खोज में रहते हैं और जिन्हें छोड़ देना श्रेयस्कर होता है वहाँ भी वे उन्हें साग्रह नियोजित करते हैं। इसके विपरीत अधिक मर्मस्पर्शी और सरस प्रसंगों को छोड़ जाते हैं।

राम के वन जाते ही, जादू की भाँति दशरथ का मरण होगया :

रामचन्द्र धाम ते चले सुनै जबै नृपाल।
बात को कहै सुनै सु ह्वै गए महा बिहाल।

ब्रह्म रंध्र फोड़ि जीव यो मिलो द्यु लोक जाय।
गेह तूरि ज्यों चकोर चन्द्र में मिलै उड़ाय।

यदि केशव में मार्मिक स्थलों की पकड़ होती तो यहाँ वे कुछ आँसू गिराते। परन्तु केशव तो दूसरे ही छन्द में वन-पथ पर जाते हुए राम के रूप में उलझ जाते हैं।

इसी प्रकार भरत ने अयोध्या में पिता की अन्त्येष्टि-क्रिया की और दूसरे ही क्षण :

पहिरे ब कला सु जटा धरि कै।
निज पायन पंथ चले अरि कै।
तरि गंग गये गुह संग लये।
चित्रकूट विलोकित छाँड़ि दये।

भरत के प्रयाण का कारण अज्ञात है। पाठक जानता है कि भरत राम को मनाने जा रहे हैं। परन्तु इसका श्रेय 'राम-चरित्त मानस' के तुलसीदास को है। केशव ने तो ऐसी तुच्छ सूचनाओं की कोई चिंता नहीं की है।

वनवास में चित्रकूट, गण्डक-वन आदि प्रवासों में केशव ने चित्रकूट, पंचवटी, गोदावरी आदि का आलंकारिक वर्णन किया है और साथ ही दूसरी घटनाओं का थोड़ा-बहुत संकेत भी। कथा समीचीन गति से चलती है परन्तु छद्म मृग को देखकर सीता का सम्मोहन, सीता की रक्षा में लक्ष्मण की नियुक्ति और धनुष-बाण लेकर राम का प्रस्थान—सब एक ही छन्द में वे कह गये हैं :

आइयो कुरंग एक चारु हेम हीर को।
जानकी समेत चित्त मोहि राम वीर को।

राजपुत्रिका समीप साधु बन्धु राखि के।
हाथ चाप बाण लै गये गिरीश नाखि के।

और लक्ष्मण के चले जाने पर तो एक ही छन्द में सीता-हरण होगया है। केशव के राम पृथ्वी का भार-हरण करने के लिए आये हैं। उन्हीं का सीता को आदेश है कि

पावक में निज देह हि राखहु।
छाय शरीर मृगै अभिलाषहु।

परन्तु उन्हीं का सीता-सहित मृग पर मोहित होना न तो राम के इस गौरवमय स्वरूप के अनुकूल है और न सीता का सम्मोहन पाठक पर विशेष प्रभाव डाल सकता है।

सीता विलाप करती है। केशव तो जानते हैं कि सीता का ले जानेवाला रावण है, परन्तु सीता को इसका ज्ञान होने की कोई सूचना पाठक के पास नहीं है। इसलिये सीता का यह विलाप करुणोत्पादक न होकर हास्योत्पादक सा होगया है:

हा राम ! हा रमन ! हा रघुनाथ धीर।
लंकाधिनाथ वश जानि हूँ मोहि वीर।

लौटने पर कुटी में सीता को न पाकर राम लक्ष्मण से पूछते हैं—

कद्ध बात कछू तुमसों कहि आई, किधौं तेहि त्रास दुराइ रही ?
अब है यह पर्णकुटीर किधौं औ किधौं वह लक्ष्मण होइ नहीं !

और दूसरे ही चरण में जैसे सामने ही जटायू पड़ा था—

धीरज सों अपनो मन रोक्यो।
गीध जटायु परयो अवलोक्यो॥

(ग) गति या प्रवाह का अभाव

रामचन्द्रिका को पढ़ते हुए ऐसी प्रतीति होती है कि कवि का उद्देश्य कथा को लघुतम घटना सहित सर्वांगसम्पूर्ण रूप में दिखाना नहीं है वरन् रामचन्द्र के जीवन के अधिक प्रकाशित अथवा महत्वपूर्ण प्रसंगों की झाँकी दिखाना मात्र है। सम्भवतः 'रामचन्द्र की चन्द्रिका वर्णतहौं बहु छन्द' से केशव का यही तात्पर्य हो। इसे काव्य की प्रचलित शैलियो में 'मुक्तक' तो नहीं कहा जा सकता क्योंकि इस कथा की माला में मुक्ताओं की स्वतन्त्र सत्ता नहीं देखी जा सकती। कथा अथवा प्रौढ द्वारा सूत्र इन प्रसंगों को जोड़कर एक प्रबन्धरूप केशव ने देना चाहा है और फलतः केशव की स्थिति एक चित्रकार का न होकर अनेक चित्रों अथवा चित्रमाला के व्याख्याता (Interpreter) की सी हो गई है। आजकल के सिनेमा-घरों में किसी विज्ञापित चलचित्र के प्रधान अंशों को दिखाकर दर्शकों पर चित्र का आकर्षक और सम्मोहन फैलाने की प्रथा है। केशवदास ने भी 'रामचन्द्रिका' में कुछ इसी प्रकार रामचन्द्र की चन्द्रिका दिखाई है। रामचन्द्रिका का कवि कभी नीरस और विस्तीर्ण उपदेश अथवा विवरण देता हुआ पाठक के मन को उकताता रहता है और कहीं पर समस्त कथा कल्पना का बोझ पाठक की कल्पना-वृत्ति पर लादकर चलता बना है। 'रामचन्द्रिका' में आद्योपान्त छन्दों का परिवर्तन है। कुछ छन्द क्षिप्रगति हैं और कुछ मन्दगति। इस कारण गति में गंगा की सी धीर और स्वाभाविक सरलता न होकर एक अधीर उच्छृंखलता है। पाठक की स्थिति ऐसी हो जाती है जैसे किसी पार्वतीय निर्झर की लहर में पड़े हुए पत्ते की। कभी वह वेग से गिरता है, कभी आवर्तों में फँसकर तल में चला जाता है और कभी समतल भूमि आ जाने पर उन पर

तैरने लग जाता है। निम्नलिखित सारिणी से कथा के विस्तार और संकोच की किंचित कल्पना हो सकेगी—

विस्तार	संकोच
अयोध्यापुरी वर्णन	विश्वामित्र-यज्ञ-रक्षा
सीता स्वयम्वर समारोह	
रावण वाण संवाद	
वैवाहिक रीति वर्णन	
राम परशुराम संवाद	दशरथ बरात वर्णन
अयोध्या वर्णन	राम-राज्यारोहण प्रस्ताव
भरत का चित्रकूट प्रयाण	कैकयी की वर याचना
	वनवास-प्रसंग
	राम-भरत-सम्भाषण
	जटायु रावण युद्ध
	शवरी-प्रसंग
रावण सीता वार्ता	
लंका-दहन	
अंगद रावण संवाद	
राम राज्य का वर्णन	युद्ध वर्णन
अश्वमेध यज्ञ	
लवकुश युद्ध	

केशव को जो प्रसंग रुचिकर प्रतीत हुआ उसे उन्होंने विविध रंगों में चित्रित किया और उनकी रुचि का आधार है उनका अनुभव पांडित्य। जहाँ उन्हें लोकनीति, राजनीति, धर्मनीति तथा काव्य-शास्त्र के ज्ञान का परिचय और प्रदर्शन करने का अवसर मिल सकता था वहाँ उन्होंने बलात पाठक को रोक लिया है। कथा मन्द हो गई है। परन्तु जहाँ ऐसा कोई अवसर नहीं है वहाँ कई

दिनों, महीनों अथवा वर्षों की घटनाएँ एक छन्द और कभी-कभी तो एक चरण में ही समेट ली गई हैं। ऐसे कुछ उदाहरण हैं :—

१. यह सुनि गुरुबानी धनुगुनतानी जानी द्विज दुख दानि।
ताड़का संहारी दारुणभारी नारी अति बल जानि।
मारीच विडारयो जलधि उतारयो मारयो सबल सुबाहु।
देवन गुण परख्यौं पुष्पन बरख्यौं हरषो यति सुरनाहु॥
(३:१०)

२. ऋषिराज सुनी यह बात जहीं।
सुखपाय चले मिथिलाहि तहीं।
बन राम शिला दरसी जबहीं।
तिय सुन्दर रूप बनी तबहीं। (५:३)

३. दशरत्थ महामन मोद रये।
तिन बोलि बशिष्ठ सों मन्त्र लये।
दिन एक कही शुभ शोक रयो।
हम चाहत रामहिं राज दयो।
यह बात भरत्थ की मातु सुनी,
पठहूँ रामहिं बुद्धि गुनी।
तेहिं मंदिर, मो नृपसों विनयो।
वर देहु हुतो हमको जु दयो।
नृप बात कही हँसि हेरि हयो।
वर माँगि सुलोचिनि मैं जु दयो।
(केकयी)
नृपता सुविशेष भरत्थ लहैं।
बरसैं बन चौदह राम रहैं॥
(६:२-३-४)

पहिरे प्रभु जटा धरि के। निज पायन पंथ चले अरिकै।
तरि गंग गये गुह संग लिये। चित्रकूट विलोकत छाँड़ि दिये।
(१० : १३)

चले बली पावन पादुका लै। प्रदक्षिणा राम सियाहु को दै।
गए तो नन्दीपुर वास कीन्हों। सबन्धु श्री रामहि चित्त दीन्हों।
(१० : ४४)

आइयो कुरंग एक चारु हेम हीर को।
जानकी समेत चित्त मोहि राम वीर को॥
राजपुत्रिका समीप भ्रातु बन्धु राखिकै।
हाथ चाप बाण लै गए गिरीश साखिकै॥
(१२ : १३)

(४) रस का अभाव : चमत्कार का प्रभाव

आचार्य विश्वनाथ और जगन्नाथ पंडितराज से लेकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तक आलोचकों ने भिन्न भिन्न शब्दों में काव्य की आत्मा रस को माना है। पाठक के मन को भावविशेष की अनुभूति से जो लोकोत्तर आनन्द उपलब्ध होता है वह 'रस' है। शुक्लजी के शब्दों में "जगत के नाना रूपों और व्यापारों के सामने जब कभी मनुष्य अपनी पृथक् सत्ता की धारणा से छूट कर विशुद्ध अनुभूति मात्र रह जाता है तब वह मुक्तहृदय हो जाता है) जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था 'रसदशा' कहलाती है।" यह 'रसदशा' 'रामचन्द्रिका' के पाठक को कभी-कभी ही होती है। पाश्चात्य समीक्षकों ने काव्य में चित्रविधान को प्रधान माना है। यह चित्र विधान भी तब तक नहीं हो सकता जबतक कवि में भाव की सम्प्रेषणक्षमता न हो। केशव का कवि सदैव केशव के (Imagery) आचार्य के आगे हतप्रभ हो गया है। संवेदनशीलता,

अनुभूतिशीलता और सहृदयता यों तो मानवमात्र
परन्तु कवि में वह विशेष सजग होता है;
को जन्म जात माना गया है—"Poets are b
अभ्यास से भी यह क्षमता समृद्ध हो जाती
निर्मूल भी हो सकती है और मनुष्य
सभ्यता के विकास में ज्यों ज्यों जीवन
बनता जाता है यह वृत्ति कम होती
यह कहना पड़ता है—"As civiliza
clines." ज्यों ज्यों सभ्यता की वृद्धि
ह्रास होता जाता है।

'काव्य-शास्त्र के पंडित
बहिरंग को ही सँभाला है,

दशरथ का यह मौन उनके हृदय के मौन रुदन का व्यंजक है।

अयोध्याकांड 'रामचरित मानस' का अत्यन्त सजल प्रसंग है। उसमें करुणा की अजस्र सरिता प्रवाहित है परन्तु केशव की रामचन्द्रिका का अयोध्याकांड चन्द्रमा का कलंक है। कैकयी के वर माँगने पर दशरथ के हृदय पर होने वाली प्रतिक्रिया केशव के लिए इतनी मर्मस्पर्शी नहीं कि उसके लिए :

यह बात लगी उर वज्र तूल।
हिय फाट्यों ज्यों जीरण दुकूल॥

से अधिक उनकी लेखनी कुछ लिख सकती। 'रामचरित मानस' में कैकयी के हृदय-परिवर्त्तन के लिए तुलसीदास ने मन्थरा को नियोजित किया है परन्तु केशव की दृष्टि अपने पात्रों के चरित्रों के स्वरूप स्पष्ट करने पर न थी। राम पर भी वनवास के समाचार की कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। रंगमंच पर सिखाये-पढ़ाये अभिनेता की भाँति—

उठ चले विपिन कहँ सुनत राम।
तज तात मात तिय बन्धु धाम॥

कौशल्या माता से विदा माँगने पर वे उसका सौतिया डाह ही दिखाकर संतोष कर लेते हैं—

रहौ चुप ह्वै सुत क्यों वन जाहु ?
न देखि सकैं तिनके उर दाहु।

पुत्र के चौदह वर्ष के दीर्घकाल के लिए बिछुड़ते समय माता के हृदय में कैसी व्यथा होती है इसे केशव का राज-समाज में पला हुआ नीतिविद् व्यक्तित्व नहीं ग्रहण कर सका। केशव की प्रतिभा और पांडित्य पर सबसे अधिक दया तब आती है

अनुभूतिशीलता और सहृदयता यों तो मानवमात्र का गुण है परन्तु कवि में वह विशेष सजग होता है, इसीलिए संभवत कवि को जन्म जात माना गया है—"Poets are born, not made" अभ्यास से भी यह क्षमता समृद्ध हो जाती है, अनभ्यास से यह निर्मूल भी हो सकती है और मनुष्य पशुवत् बन जाता है। सभ्यता के विकास में ज्यों ज्यों जीवन कृत्रिम और अनैसर्गिक बनता जाता है यह वृत्ति कम होती जाती है और मैकॉले को यह कहना पड़ता है—"As civilization advances, poetry declines." ज्यों ज्यों सभ्यता की वृद्धि होती त्यों त्यों कविता का ह्रास होता जाता है।

काव्य-शास्त्र के पंडित और आचार्य केशवदास ने काव्य के वहिरंग को ही सँभाला है, अन्तरंग को उपेक्षित किया है।

मानव-जीवन के चित्र

मानवीय जीवन के अत्यन्त मर्मस्पर्शी और हृदयद्रावक क्षणों में भी केशव का कवित्व नहीं पिघला है। राम को तपोवन की रक्षा के लिए माँगनेवाले विश्वामित्र राजा दशरथ पर, उनकी ममता को समझने का प्रयास किये बिना ही क्रोधित होकर कहने लगते हैं—

झूठे सों झूठ हि बाँधत हौ मन। छोड़त हो नृप सत्य सनातन॥

परन्तु पुत्रों को सौंप देने के पश्चात दशरथ की स्थिति को केशव ने अपनी लेखनी के एक दो स्पर्श में ही अंकित करके पाठक के मन में करुणा प्रवाहित करदी है—

राम चलत नृप के युग लोचन।
वारि भरित भये वारिद लोचन॥
पायन परि ऋषि के सजि मौनहिं।
केशव उठि गये भीतर भौनहिं॥

दशरथ का यह मौन उनके हृदय के मौन रुदन का व्यंजक है।

अयोध्याकांड 'रामचरित मानस' का अत्यन्त सजल प्रसंग है। उसमें करुणा की अजस्र सरिता प्रवाहित है परन्तु केशव की रामचन्द्रिका का अयोध्याकांड चन्द्रमा का कलंक है। कैकयी के वर माँगने पर दशरथ के हृदय पर होने वाली प्रतिक्रिया केशव के लिए इतनी मर्मस्पर्शी नहीं कि उसके लिए :

यह बात लगी उर वज्र तूल।
हिय फाट्यों ज्यों जीरण दुकूल ॥

से अधिक उनकी लेखनी कुछ लिख सकती। 'रामचरित मानस' में कैकयी के हृदय-परिवर्त्तन के लिए तुलसीदास ने मन्थरा को नियोजित किया है परन्तु केशव की दृष्टि अपने पात्रों के चरित्रों के स्वरूप स्पष्ट करने पर न थी। राम पर भी वनवास के समाचार की कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। रंगमंच पर सिखाये-पढ़ाये अभिनेता की भाँति—

उठ चले विपिन कहँ सुनत राम।
तज तात मात तिय बन्धु धाम ॥

कौशल्या माता से विदा माँगने पर वे उसका सौतिया डाह ही दिखाकर संतोष कर लेते हैं—

रहौ चुप ह्वै सुत क्यों वन जाहु ?
न देखि सकैं तिनके उर दाहु।

पुत्र के चौदह वर्ष के दीर्घकाल के लिए बिछुड़ते समय माता के हृदय में कैसी व्यथा होती है इसे केशव का राज-समाज में पला हुआ नीतिविद् व्यक्तित्व नहीं ग्रहण कर सका। केशव की प्रतिभा और पांडित्य पर सबसे अधिक दया तब आती है

जब राम अपनी माता को और कौशल्या जैसी माता को नारी-धर्म और विधवा-धर्म की शिक्षा देने लगते हैं—

१. तुम क्यों चलौ बन आजु। जिन सीस राजत राजु।
जिय जानिए पतिदेव। करि सर्व भाँतिन सेव।
पति देइ जो अति दुःख। मन मान लीजे सुक्ख।
नित पति पंथहि चलिए। दुख सुख को दलि दलिए।
तनमन सेबहु पति को। तब लहिए सुभ गति को।
(६ : १२-१३)

२. गानबिन मानबिन हास बिन जीवहीं।
तप्त नहिं खाय जल सीत नहिं पीवहीं।
तेल तजि, खेल तजि खाट तजि सोवहीं।
सीत जल नहाय नहिं उष्ण जल जोवहीं। (६ : १८

यदि काव्य में ऐसी अमंगलजनक सूचना को किसी दोष के अन्तर्गत परिगणित किया जाता हो तो केशवदास का यह काव्य वस्तुतः दुष्ट काव्य है। राम के वन जाते समय भाई लक्ष्मण और पत्नी सीता के मिलने के प्रसंग में भी बाबा तुलसीदास की थोड़ी सी जूठन बटोरकर ही केशव ने संतोष कर लिया है। उस समयसीता जो लक्ष्मण को पुत्रवत समझती हैं उनसे कहती हैं—

सहिहों तपन ताप पर के प्रताप।
रघुवीर को विरह वीर! मों सों न सह्यौ परै।

ठीक इसी के विपरीत जब सुग्रीव राम को सीता का उत्तरीय लाकर देते हैं तब राम उत्तरीय को देखकर जो कुछ कहते हैं उसे यदि किसी के प्रति माना जाय तो उनकी मर्यादा के अनुरूप नहीं होता और उसे यदि स्वगत समझा जाय तो असंगत ठह-

रता है क्योंकि राम जानते थे कि केवल छायारूपिणी सीता का हरण हुआ है और सचमुच सीता का नहीं:—

पंजर कै खंजरीट नयन को कसोदास,
कैधौं मीन मानुप को जल है कि जारु है।
अंग को कि अंगराग गेंडुआ की गलसुई,
किधौं कोट जीवहि को उरको कितारु है॥
बंधन हमारे काम केलि को, कि ताड़िबे को,
ताजनों विचार को कै ब्यजन विचारु है।
मानकी जमनिका कै कंजमुख भूरिबे को,
सीताजू को उत्तरीय को सब सुख सारुहै॥
(१२ : ६२)

वन में जाते हुए राम सीता और लक्ष्मण की शोभा चित्रित करने में जहाँ तुलसी की वाणी थकती नहीं वहाँ केशव सन्देहालंकार की सूझ में राम को ठग, धर्षक, ब्राह्मण-घातक और न जाने क्या-क्या बना देते हैं!—

किधौं यह राजपुत्री वरही वरी है किधौं
उपदि परयो है यहि शोभा अभिरत हौ।
किधौं रतिनाथ जस साथ केसोदास,
जात तपोवन सिव बैर सुमिरत हौ॥
किधौं मुनि साप हित, किधौं ब्रह्मदोपरत,
किधौं सिद्धि सुत सिद्ध परम विरत हौ।
किधौं कोऊ ठग हो ठगोरी लीन्हें किधौं तुम,
हरिहर श्री हो सिवा चाहत फिरत हौ॥
(६ : ६४)

उधर तुलसीदास के वर्णन से इसकी तुलना कीजिए—

आगे राम लखन बनें पाछे। तापसवेष विराजत काछे।
उभयबीच सिय सोहति कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी।
बहुरि कहौं छवि जसिमन बसई। जनु मधु मदन मध्य रति लसई।
उपमा बहुरि कहहुँ जिय जोई। जनु बुध विधु बिचरोहिणि सोई।

सीता, तुलसीदास की आराध्य देवी सीता, चलते समय अपने प्रभु के चरण-चिन्हों के बीच-बीच में अपने पाँव धरती हुई चलती हैं। वहाँ केशव की सीता झुलसे हुए पाँवों को राम के चरण-चिन्हों की शीतलता से सुख पहुँचाने के लिए उनपर पाँव धरती हुई चलती हैं। एक अद्वितीय-अप्रतितम पति-भक्ति का उदाहरण है—

प्रभु पद रेख बीच बिचसीता। धरति चरन मग चलति सभीता।

और दूसरा शरीर-सुख-लालसा और स्वार्थपरता का—

मारग की रज तापित है अति।
केशव सीतहिं सीतल लागति।
त्यों पद पंकज ऊपर पायनि।
दै जु चलै तेहि ते सुखदायिनि। (६ : ३८)

राम-वनवास और दशरथ मरण के पश्चात् भरत के अयोध्या लौटने पर जहाँ तुलसी भरत का राम-प्रेम क्रोध और असर्ष दिखाकर पाठक का हृदय द्रवित करने में समर्थ हैं वहाँ केशव अपनी चिरपरिचित प्रश्नोत्तर-प्रणाली द्वारा भरत का समस्त भावावेश संकुचित कर देते हैं—

मातु कहाँ नृप ?
तात गये सुरलोकहिं
क्यों ?
सुत सोक लये।

सुत कौन सु ?
राम,
कहाँ हैं अबै ?
बन लच्छन सीय समेत गये ।
बन काज कहा कहि ?
केवल मो सुख,
तो को कहा सुख यामें भये ?
तुमको प्रभुता,
धिक ! तो कों कहा, अपराध बिना सिगरेइ हये !
(१०:४)

यह प्रश्नोत्तर और इसके उपरान्त भरत की :

भर्ता-सुत विद्वेषिनी सबही को दुखदाइ।

भर्त्सना कैकेयी के गुरुतम अपराध के लिए बहुत हलकी है और भरत के प्रति भी सशंक कर देती है। कैकेयी से अधिक कुछ कहे बिना ही विमाता कौशल्या के पास चले जाना भरत की कूटनीतिज्ञता का ही परिचायक हो सकता है, उनके भ्रातृप्रेम का नहीं। यह प्रसंग भी केशव यथेष्ट रूप में अंकित न कर सके।

जब भरत चित्रकूट में सेना-समाज सहित राम को अयोध्या लौटा लाने के लिए आते हुए दिखाई देते हैं तो 'रामचरितमानस' की भाँति 'रामचंद्रिका' के भी लक्ष्मण सशंक हो उठते हैं :

देहु भरत चमू सजि आये। जानि अबल हमको उठि धाये।

परन्तु सेना का वर्णन करने में अलंकारिकता का पुट देकर और वीरके स्थायीभाव की व्यंजना करके केशव उक्त शंका की व्यंजना में बाधक हो गये !

युद्ध को आज भरत्थ चढ़े धुनि दुंदुभि की दसहूँ दिसि धाई।
प्रात चली चतुरंग चमू बरनी सु न केशव कैसहु जाई॥

यों सबके तन आननि में झलकी अरुणोदय की अरुणाई।
अन्तर ते जनुरंजन को रजपूतन की रज बाहर आई।
(१० : १८)

केशव यह जानते थे कि भरत सेना के साथ युद्ध करने नहीं आये हैं तब इस प्रकार का वर्णन (आलंकारिक रूप में ही सही) करना प्रसंगोपयुक्त भाव का व्यंजक नहीं हो सकता। इसे लक्ष्मण का चिन्तन भी मान लें तब भी :

रण राजकुमार अरुझँहिगे जू। अति सनमुख घायन जूझँहिगे जू।
जनु ठौरनि ठौरनि भूमि नवीने। तिनके चढ़िवे कहँ मारग कीन्हें।

उपर्युक्त वर्णन लक्ष्मण के उस रौद्र भाव का उद्दीपक नहीं बन सकता जो अगले छन्द में प्रकट हुआ है :

मारि डारौं अनुज समेत यहि खेत आजु,
मेटि पारौं दीरघ वचन निज गुर को।
सीतानाथ सीता साथ बैठे देखि छत्रतर,
एहि सुख सोखौं सोक सबही के उर को॥
केसोदास सविलास बीसबिसे वास होय,
कैकेयी के अंग अंग सोक पुत्रजुर को।
रघुनाथजू को साज सकल छिड़ाई लेऊँ,
भरतहिं आज राज देउँ प्रेत पुर को। (१०:२५)

एक बात और। रौद्र रस की निष्पत्ति में क्रोध के आलम्बन पर ही रस का समस्त आस्वादन निर्भर है। यदि अत्याचारी रावण के क्रोध का आलम्बन राम को दिखाया जाय तो अत्यन्त सहृदय पाठक के हृदय में भी रस का परिपाक नहीं होगा क्योंकि ऐसी स्थिति में आश्रय के साथ पाठक की समानुभूति होना कठिन है। उक्त उक्ति में भी भरत के आलम्बन होने के कारण रौद्र रस का पूर्ण आस्वादन नहीं होने पाता।

राम को मृग को मारकर लौटने पर, सीता को न पाने पर विकल होना था परंतु केशवदास के राम कुटी पर आते ही कवि के से सन्देह में ग्रस्त हो जाते हैं—

निज देखौं नहीं सुभ गीतहि सीतहिं कारण कौन कहौ अबहीं।
अति मो हित कै बन माँझ गई सुरमारग मैं मृग मार्‌यो जहीं॥
कटु बात कछू तुमसों कहि आई किधौं तिहि त्रास दुराय रहीं।
अब है यह पर्णकुटी किधौं और कियौं वह लक्ष्मण होइ नहीं॥

राम का यह सन्देह आलंकारिक हो या यथार्थ इससे केशव ने राम की सर्वज्ञता पर पानी अवश्य फेर दिया है। जो राम भुव-भार उतारने के लिए माया-मृग की माया और सीता का छाया-शरीर ग्रहण करने की माया रचते दिखाये गए हैं वे राम अवश्य एक पल के लिए इस भ्रम में पड़ गये हैं कि उनसे भी अधिक प्रबल कोई राक्षसी माया उन्हें नचाना चाहती है। अस्तु, राम इसी असमंजस में हैं कि जटायु दिखाई पड़ गया है और उसने सूचना दी है कि रावण सीता को ले गया है; परंतु राम पर अब भी विकलता का कोई आक्रमण नहीं होता। वे उनकी खोज उसी प्रकार करते हैं जैसे आँखमिचौनी के खेल में—

दिस दच्छिन को करि दाह चले।
सरिता गिरि देखत वृच्छ भले॥

आगे कबन्ध से मुठभेड़ होने पर और उससे यह संकेत पाने पर कि—

सुर-सरि ते आगे चले मिलि हैं कपि सुग्रीव।
दै हैं सीता की खबर याहीं सुख अति जीव॥

ही राम की विरह दशा प्रारम्भ होती है और वे चक्रवाक युग्म को देखकर सीता के उपकार का प्रतिदान देने के नाते उनसे उनका

पता पूछते हैं। चकोर और करुणा वृत्त से भी—उनके नाम की सार्थकता का आग्रह करते हुए—निवेदन करते हैं परन्तु याचक (भ्रमर) के शत्रु चम्पक (शोकहीन) अशोक, तीक्ष्ण कंटकधारी केतक,-केतकी और गुलाब से नहीं पूछ सकते। इस प्रकार के वर्णन केशव का वाग्वैदग्ध्य सूर्य और पांडित्य अवश्य श्लाध्य हैं परन्तु राम की विरहदशा को व्यंजित करने में वह असमर्थ है।

तुलसी के 'राम चरित मानस' के राम की यह उक्ति अधिक मार्मिक है—

हे खगमृग हे मधुकर स्रेनी !
तुम देखी सीता मृग नैनी !!
खंजन सुक कपोत मृग मीना।
मधुप निकर कोकिला प्रवीना।
कुन्दकली दाड़िम दामिनी।
कमल शरद शशि अहिभामिनी।
वरुण पाश मनोज-धनु हंसा।
गज केहरि निज सुनत प्रसंसा।
श्री फल कनक कदलि हर्षाहीं।
नेकु न संक सकुच मन माहीं।
सुन जानकी तोहि बिन आजू।
हरसे सकल पाइ जनु राजू। (अरण्यकांड)

राम सोचते हैं—

जो पदार्थ और जीव सीता के अंग-प्रत्यंग के सौंदर्य की समता न करने के कारण क्षुब्ध थे, वे आज सीताहरण पर कितने हर्षित हो रहे होंगे : नेत्र (खंजन मृग, मीन), नासिका (शुक), कण्ठ (कपोत), अलक (मधुप-निकर), कण्ठ-स्वर (कोकिल), दन्त-पंक्ति (कुन्द-दाड़िम), स्मित (दामिनी), मुँह (कमल), मुख-

मण्डल (शरद-शशि), बाहु-पाश (वरुण-पाश), भ्रू (मनोज-धनु), मंथर गति (हंस, गज), कटि (केहरि-सिंह) वक्षस्थल (श्रीफल), जंघा (कदली), आदि अंग-प्रत्यंग के उपमान के रूप में माने जानेवाले सब जीव और पदार्थ आज मानों राज पा गये हैं। कवि ने आलंकारिक चमत्कार द्वारा अनूठी भाव-व्यञ्जना भी की है, परन्तु 'रामचन्द्रिका' के राम स्त्रैण अथवा कामुक पति का रूप पाकर उपहासास्पद हो उठे हैं। नेत्ररूपी खंजनों के लिए पिंजरा, मन-मीन के लिए जल या जाल, अंग के लिए अंगराग, गेंडुआ और गलसुई, प्राणों के लिए रक्षा-कोट हृदय के लिए हार आस क्रीड़ा के लिए हाथों का बन्धन और ताजना (कोड़ा), काम-भावना को उद्दीप्त करने के लिए व्यजन और कामिनी-मान के समय आवरण बननेवाला सीता का यह बहुरूपी उत्तरीय पाठक के हृदय को राम की विरह-वेदना तक नहीं पहुँचा पाता।

राम का वियोग-वर्णन करने में तो केशव ने फिर भी परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष रूप में कुछ-न-कुछ कौशल प्रकट किया है परन्तु सीता के विरह-वर्णन में वे असफल ही रहे। सीता की वियोग दशा उनके हरण से ही प्रारम्भ हो जाती है। रावण के वश में पड़ी हुई सीता का यह उद्‌गार—

हा राम ! हा रमन ! हा रघुनाथधीर।
लंकाधिनाथ वश जानहु मोहिं वीर॥
हा पुत्र लक्ष्मण ! छुड़ावहु वेगि मोहीं।
मार्तंड वंश-यश की सब लाज तोहीं॥ (१२ : २१)

मर्मस्पर्शी नहीं है। स्वर्गीय डाक्टर पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल के शब्दों में "यदि केशव मनोवृत्तियों से परिचित होते तो इस अवसर पर इस अपील में उनकी सीता अपना हृदय

खोलकर रख देतीं, अपनी निस्सहाय अवस्था का जिक्र करतीं अपने हर्ता की क्रूरता का बखान करतीं, उसे कोसतीं; केवल लंका धिनाथ ! कहकर न रह जातीं; लक्ष्मण को बुरा-भला कहने तथ उनका आदेश न मानने के लिए अपने आपको धिक्कारत अपने पर व्यंग छोड़तीं । पर इस तार खबर में क्या है और कहाँ त आत्मीयता झलकती है ? रमन और पुत्र को छोड़कर कौन था ऐसी है जिसको आपत्ति में पड़ी हुई स्त्री दूसरे के प्रति नह कह सकती ?" यह कहना उचित नहीं है कि "जानकी की ठी वही दशा है जो एक प्रचंड सिंह के द्वारा आक्रान्त व्यक्ति व हो सकती है। ऐसी दशा में मुँह से एक शब्द तक निकालना कठि है । अपना हृदय खोलकर रखना तो दूसरी बात है । अतः केश ने थोड़े ही संकेतात्मक शब्दों के द्वारा जो इस निस्सहाय पि स्थिति की व्यंजना करवाई है यह सर्वथा समीचीन है।" क्यों केशव की सीता नितान्त निस्सहाय नहीं है । वही सीता अशो वाटिका में राक्षसों के बीच में, रौद्ररूपा बनकर कहती है—

तृण बिच देइ बोली सीय गम्भीर बानी ।
दसमुख सठ को तू कौन की राजधानी ॥
दशरथसुतद्वेषी रुद्र ब्रह्मा न भासैं ।
निसिचिर बपुरा तू क्यों न स्यों मूल नासैं ॥ (१३ :

× × ×

उठि उठि सठ ह्याँ ते भाग तौ लौं अभागे ।
मन वचन विसर्पी सर्प जौ लौं न लागे ॥
विकल सकुल देखौं आसु ही नास तेरो ।
निपट मृतक तोकों रोप मारै न मेरो ॥ (१३ : ६

यदि सीता की स्थिति दयनीय है तो उक्त उद्गार असंगत जाते हैं वस्तुतः केशव मार्मिक प्रसंगों के चित्रण में उतनी आसा

नहीं दिखाते जितनी वीरता, क्रोध, कूटनीति, सभा-चातुर्य, वाग्वैदग्ध्य आदि प्रसंगों के चित्रण में। सीता की विरह-दशा केवल उनकी एक वेणी, मैली साड़ी और राम नाम की रट में समाविष्ट है—

धरे एक वेणी मिली मैल सारी।
मृणाली मनो पंक ते काढ़ि डारी।
सदा राम नामै रटै दीन बानी।
चहुँ ओर हैं राकसी दुःखदानी। (१३ : ५३)

किसी व्यक्ति की अवस्था विशेष का वर्णन दो प्रकार से होता है—कवि के प्रत्यक्ष वर्णन द्वारा और व्यक्ति के आत्मकथन द्वारा। केशव जब प्रथम रीति को अपनाते हैं, तो प्रायः अलंकारों का मोह उनकी कलम को जकड़ लेता है और जब दूसरी रीति का आश्रय लेते हैं तो केशव को शब्द नहीं मिलते। ऐसा अनुभव पाठक को कई बार होता है। राम के विश्वामित्र के साथ प्रस्थान के प्रसंग में केशव ने केवल कुछ संकेतों में ही दशरथ की व्यथा चित्रित कर दी है—

राम चलत नृप के युग लोचन।
वारि भरित भए वारिद रोचन।
पायन परि ऋषि के सजि मौनहि।
केशव उठिगे भीतर भौनहिं।

इसी प्रकार चित्रकूट में राम के पूछने पर कि पिता अच्छे हैं? माताओं की व्यथा रुदन-चेष्टा द्वारा ही दिखाई गई है—

तब पुत्र को मुख जोय। क्रम तें उठीं सब रोय।

इन दोनों उदाहरणों में केशव ने व्यथा का चित्रण करने में चेष्टाओं का आश्रय लिया है, उद्गारों का नहीं। यह केशव के वश की बात नहीं थी।

खोलकर रख देतीं, अपनी निस्सहाय अवस्था का जिक्र करतीं, अपने हर्ता की क्रूरता का बखान करतीं, उसे कोसतीं; केवल लंकाधिनाथ ! कहकर न रह जातीं; लक्ष्मण को बुरा-भला कहने तथा उनका आदेश न मानने के लिए अपने आपको धिक्कारतीं, अपने पर व्यंग छोड़तीं। पर इस तार खबर में क्या है और कहाँ तक आत्मीयता झलकती है ? रमन और पुत्र को छोड़कर कौन बात ऐसी है जिसको आपत्ति में पड़ी हुई स्त्री दूसरे के प्रति नहीं कह सकती ?" यह कहना उचित नहीं है कि "जानकी की ठीव वही दशा है जो एक प्रचंड सिंह के द्वारा आक्रान्त व्यक्ति क हो सकती है। ऐसी दशा में मुँह से एक शब्द तक निकालना कठि है। अपना हृदय खोलकर रखना तो दूसरी बात है। अतः केश ने थोड़े ही संकेतात्मक शब्दों के द्वारा जो इस निस्सहाय पि स्थिति की व्यंजना करवाई है यह सर्वथा समीचीन है।" क्यों केशव की सीता नितान्त निस्सहाय नहीं है। वही सीता अशो वाटिका में राक्षसों के बीच में, रौद्ररूपा बनकर कहती है—

तृण विच देइ बोली सीय गम्भीर बानी।
दसमुख सठ को तू कौन की राजधानी॥
दशरथसुतद्वेपी रुद्र ब्रह्मा न भासै।
निसिचिर बपुरा तू क्यों न स्यों मूल नासै॥ (१२

× × ×

उठि उठि सठ ह्याँ ते भाग तौ लौं अभागे।
मन वचन विसर्पी सर्प जौ लौं न लागे॥
विकल सकुल देखौं आसु ही नास तेरो।
निपट मृतक तोकों रोष मारै न मेरो॥ (१३

यदि सीता की स्थिति दयनीय है तो उक्त उद्गार असं जाते हैं वस्तुतः केशव मार्मिक प्रसंगों के चित्रण में उतनी अ

नहीं दिखाते जितनी वीरता, क्रोध, कूटनीति, सभा-चातुर्य, वाग्वैदग्ध्य आदि प्रसंगों के चित्रण में। सीता की विरह-दशा केवल उनकी एक वेणी, मैली साड़ी और राम नाम की रट में समाविष्ट है—

धरे एक वेणी मिली मैल सारी।
मृणाली मनो पंक ते काढ़ि डारी।
सदा राम नामै रटै दीन बानी।
चहुँ ओर हैं राकसी दुःखदानी। (१३ : ५३)

किसी व्यक्ति की अवस्था विशेष का वर्णन दो प्रकार से होता है—कवि के प्रत्यक्ष वर्णन द्वारा और व्यक्ति के आत्मकथन द्वारा। केशव जब प्रथम रीति को अपनाते हैं, तो प्रायः अलंकारों का मोह उनकी कलम को जकड़ लेता है और जब दूसरी रीति का आश्रय लेते हैं तो केशव को शब्द नहीं मिलते। ऐसा अनुभव पाठक को कई बार होता है। राम के विश्वामित्र के साथ प्रस्थान के प्रसंग में केशव ने केवल कुछ संकेतों में ही दशरथ की व्यथा चित्रित कर दी है—

राम चलत नृप के युग लोचन।
वारि भरित भए वारिद रोचन।
पायन परि ऋषि के सजि मौनहि।
केशव उठिगे भीतर भौनहिं।

इसी प्रकार चित्रकूट में राम के पूछने पर कि पिता अच्छे हैं? माताओं की व्यथा रुदन-चेष्टा द्वारा ही दिखाई गई है—

तब पुत्र को मुख जोय। क्रम तें उठीं सब रोय।

इन दोनों उदाहरणों में केशव ने व्यथा का चित्रण करने में चेष्टाओं का आश्रय लिया है, उद्गारों का नहीं। यह केशव के वश की बात नहीं थी।

सीता की वियोग-विकलता का चित्रण करने के स्थान पर केशव उनकी परवशता की स्थिति का संकेत ही आलंकारिक शैली में कर सके हैं—

ग्रसी बुद्धि सी चित्त चिन्तानि मानों।
किधौं जीभ दंतावली में बखानों।
किधौं घेरि के राहु नारीन लीनो।
कला चन्द्र की चारु पीयूष भीनो। (१३:५४)

इन कल्पनाओं से सीता की विवशता–परवशता का चित्र तो अंकित हो जाता है परन्तु उनकी विरह की दारुणता की व्यंजना नहीं होती और प्रत्यक्ष वर्णन के स्थान पर हनुमान के मुँह से परोक्ष वर्णन का आश्रय लेने पर भी केशव सीता की शरीर-क्षीणता की ओर पुष्ट संकेत नहीं कर पाते। सीता के उच्छ्वासों की गहनता नहीं प्रदर्शित कर पाते जितनी अलंकार के प्रभाव से दिन की क्षीणता और रात्रि की गहनता व्यंजित हो उठी है,

प्रति अंगन के संग ही दिन नासैं।
निशि सों मिलि बाढ़ति दीह उसासैं।
निसि नेकहु नींद न आवति जानों।
रवि की छवि ज्यों अधरात बखानों।

सीता की यह दशा राम की विरह-दशा से अधिक मार्मिक है—

भौंरिनी ज्यों भ्रमति रहति बनबीथिकानि,
हंसिनी ज्यों मृदुल मृणालिका चहति है।
हरिनी ज्यों हेरति न केसरी के काननहिं,
केका सुनि व्याल ज्यों बिलानही चहति है॥
पीउ पीउ रटति रहति चित चातकी ज्यों,
चंद चितै चकई ज्यों चुप ह्वै रहति है।

सुनहु नृपति राम विरह तिहारे ऐसी,
सुरतिन सीताजू की मूरति गहति है ॥ (१४ : २६)

शृङ्गार के वियोगपक्ष में उद्दीपन विभाव का महत्व सभी रसज्ञ और रसस्रष्टा स्वीकार करते हैं। सीताजी के उत्तरीय को देखकर राम की जो दशा हुई थी वह उनके सात्विक विरह की व्यंजना करने में असमर्थ रही। वियोगिनी सीता को और भी विरह-पीड़ित करने के लिए राम की मुद्रिका का स्पर्श पर्याप्त था और कोई कुशल रस-स्रष्टा उसका समुचित उपयोग कर लेता परन्तु सीता ने

आँसु अनहाय उर लाय मुँदरी लई॥

के अनुष्ठान तथा

निरखि निरखि प्रिय मुद्रिकहिं वर्णति हैं बहु भाय।

की प्रक्रिया से केवल यही व्यंजित किया कि राम की मुद्रिका केवल उनके प्रेमभाव की उद्दीपक है, विरह-वेदना की नहीं। ऐसे स्थल पर सीता के द्वारा मुद्रिका को उसके दुख के अँधेरे को दूर करनेवाली सूर्य-किरण, उर को शीतल करनेवाली चन्द्रकला, राम का स्मरण कराकर आनन्द दिलानेवाली उनकी कीर्ति, राज्यश्री का प्रतीक, श्रीचिन्हधारिणी होने के नाते विष्णुका वक्षस्थल, अष्टापद (स्वर्ण और सिंह) युक्त होनेके कारण पार्वती, अक्षर (ब्रह्म और राम का नाम) और माया (माया और सुवर्ण) मयी, प्रियतम का जयजयकार करनेवाली प्रतिहारिणी के रूप में सन्देह, उत्प्रेक्षा और उल्लेख के माध्यम से वर्णन करना सीता की विरह-दशा से अधिक संगत नहीं होता। कवि वस्तुवर्णन में यहाँ सीता न बनकर सीता को कवि के रूप में प्रस्तुत कर गया है। कवि-कर्म का आग्रह था कि यहाँ विरहिणी सीता पर मुद्रा-

दर्शन से होनेवाली अनेक प्रतिक्रियाओं और हार्दिक संवेदनाओं की उद्भावना होती और विप्रलम्भ शृंगार का परिपाक होता।

राम-रावण युद्ध के उपरान्त जब सीता की अग्नि-परीक्षा ली जा रही है तब केशव अग्नि-परीक्षा का कोई कारण प्रदर्शित किये बिना ही सन्देहालंकार के आवेश में गा रहे हैं:

महादेव के नेत्र की पुत्रिका-सी।
कि संग्राम की भूमि में चंडिका-सी॥
मनो रत्न सिंहासनस्था शची है।
किधौं रागिनी रागपूरे रची है॥ (२० : ५)

× × ×

कि सिंदूर शैलाग्र में सिद्ध-कन्या।
किधौं पद्मिनी सूरसंयुक्त धन्या॥
सरोजासना है मनो चारु बानी।
जपा पुष्प के बीच बैठी भवानी॥ (२० : ७)

वर्णन अत्यन्त ओजस्वी है और सीता के गौरव के अनुरूप भी है। वह कवि की अलंकारप्रियता पर तिलक लगानेवाला है परन्तु सीता और राम के इस मिलन-महोत्सव में वह प्रेम की तीव्रता का व्यंजक नहीं होता। ऐसा अनुमान होता है कि राम का समस्त उत्साह कुंठित हो गया है। ब्रह्मा, महादेव, दशरथ और अग्निदेवता के कहने पर जब वे सीता को अंक से लगा लेते हैं तब तो ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे राम, मर्यादा पुरुषोत्तम राम, यदि लोक-मर्यादा की रक्षा के लिए इतनी अशिष्टता न दिखाते तो यह उनके चरित्र के अधिक अनुरूप हुआ होता।

'रामचंद्रिका' में रस-सृष्टि

यद्यपि उपर्युक्त त्रिविध दोषों के कारण 'रामचंद्रिका' में अनेक स्थानों पर रसभंग और रसघात हुआ है, तो भी

ऐसे स्थलों की संख्या कम नहीं है जहाँ केशव प्रसंगानुरूप रस-सृष्टि कर सके हैं।

वीर और रौद्र रस

राजकवि केशव राजसी प्रताप, ऐश्वर्य, युद्ध, सेना-प्रयाण वीरता, आतंक आदि दृश्यों और प्रसंगों का वर्णन करने में अधिक कुशल हैं। वस्तुतः ऐसे ही प्रसंग उनकी वृत्ति के अनुकूल थे और इसी कारण वीर, रौद्र, भयानक आदि सवर्गीय रसों की व्यंजना करने में उन्हें असफल नहीं कहा जा सकता। भरत के सेना-प्रयाण के वर्णन में परिस्थिति के आग्रह से चाहे जितनी ही अनुपयुक्तता हो एक सजीवता अवश्य है। ऐसा ही ओजस्वी वर्णन विजयदशमी के अवसर पर राम की सेना के प्रयाण का है :

कहै केशोदास तुम सुनो राजा रामचन्द्र,
रावरी जबहि सैन उचकि चलति है।
पूरति है भूरि धूरि रोदसी के आसपास,
दिसि दिसि बरषा ज्यों बलनि बलऽति है॥
पन्नग पतंग तरु गिरि गिरिराज गज-
राज मृग मृगराजराजिनि दलति है।
जहाँ तहाँ ऊपर पताल पय आय जात,
पुरइन को सो पात पुहुमी हिलति है॥ (१४:३७)

इसी प्रकार राम के अश्वमेध के पीछे जानेवाली उनकी चतुरंगिणी सेना का यह वर्णन उत्कृष्ट वर्णनों में परिगणित किया जा सकता है :

राघव की चतुरंग चमूचय को गनै केशव राज-समाजनि।
सूर तुरंगन के अरुझैं पग तुंग पताकन की पट साजनि।

टूटि परैं तिनतें मुक्ता धरनी उपमा बरनी कविराजनि।
बिंदु किधौं मुखफेननि के किधौं राजसिरी स्रवै मङ्गल लाजनि॥

युद्ध वर्णन—'रामचन्द्रिका' में युद्ध के दो प्रसंग हैं-रामरावण-युद्ध और लव-कुश युद्ध। राम-रावण युद्ध में जब-जब राक्षसी-दल के अभियान और युद्ध-कौशल का प्रसंग आता है केशव ओजस्वी शब्द-विधान द्वारा तथा प्रत्यक्ष रूप वर्णन द्वारा पाठक को आतंकित करने में सफल होते हैं। नीचे कुछ वर्णन प्रस्तुत किये जाते हैं—

१. उड़ै दिसा दिसा कपीस कोटि कोटि स्वाँस ही।
चवैं चपेट बाहु जानु जंघ सों जहीं तहीं।
लिये लपेटि ऐंचि ऐंचि वीर बाहु बात ही।
भखे ते अंतरिक्ष ऋक्ष लक्ष लक्ष जात ही। (१८ : २१)

२. जो व्याघ्रवेश रथ व्याघ्रहि केतुधारी।
आरक्त लोचन कुवेर विपत्तिकारी।
लीन्हें त्रिसूल सुरसूल समूल मानो।
श्री राघवेन्द्र अतिकाय वहै सो जानो। (१७ : ३३)

राम के रौद्र रूप का चित्र भी ओजस्वी है :

करि आदित्य अदृष्ट नष्ट जम करौं अष्ट वसु।
रुद्रन बोरि समुद्र करौं गन्धर्व सर्व पशु।
बलित अबेर कुबेर बलिहिं गहि देइ इन्द्र अब।
विद्याधरन अविद्य करौं विन सिद्धि सिद्ध सब।

निज होहु दासि दिति की अदिति अनिल अनल मिटि जाय जल।
सुनि सूरज! सूरज उवत ही करौं असुर संसार बल॥
(१७ : ४६)

ऐसे वर्णनों में भी युद्ध के प्रत्यक्ष वर्णनों का अभाव है।

परन्तु राम-रावण युद्ध में जैसा वर्णन केशव नहीं कर सके, वैसा उन्होंने लवकुश-रामयुद्ध में कर दिया और युद्ध-वर्णन की लाज रखली। लव-कुश-रामयुद्ध का वर्णन या चित्रण सचमुच ओजस्वी और प्रभविष्णु है। बालक लव का शत्रुघ्न से युद्ध आदि प्रसंग पूर्ण विस्तार से वर्णित हुए हैं और युद्ध को चित्रांकित करने में समर्थ हैं—

लव-शत्रुघ्न युद्ध

रोष करि बाण बहु भाँति लव छंडियो
एक ध्वज, सूत, युग, तीन रथ खंडियो।
शस्त्र दशरत्थ सुत अस्त्र कर जो धरै।
ताहि सियपुत्र तिल तूल सम खंडरै।—(३५ : १६)

कुश-शत्रुघ्न युद्ध

गाहियो सिन्धु सरोवर सो जेहि बानि बली वर सो वर पेरयो।
ढाहि दिये सिर रावन के गिरि से गुरु जात न जातन हेरयो।
शाल समूह उखारि लिये लवणासुर पीछे ते आय सो टेरयो।
राघव को दल मत्त करीश्वर अंकुश दै कुश केशव फेरयो।
(३५ : २७)

लव-लक्ष्मण युद्ध

लै धनुबाण बली तब धायो।
पल्लव ज्यों दल मार उड़ायो।
यों दोउ सोदर सैन्य सँहारे।
ज्यों बन पावक पौन बिदारे।
भागत हैं भट यों लव आगे।
राम के नाम ते ज्यों अघ भागे।

युत्थप यूथ यौं मारि भगायो।
बात बड़ी जनु मेघ उड़ायो। (३६-१३-१४)

कुश-लक्ष्मण युद्ध

अति रोष-रसे कुश केशव श्री रघुनायक सौं रण रीति रचैं।
तेहिं बारन बाई भई बहु बारन खर्ग हने न गिने किरचैं।
तहँ कुम्भ फटे गजमोति कटैं तें चले बहि शोणित रोचि रचैं।
परिपूरन पूर पनारन ते जनु पीक कपूरन की किरचैं।
(३९ : ५)

राम-रावण युद्ध

राम और रावण की सेनाओं का युद्ध दो भीषण शक्तियों का युद्ध है—इसलिए दोनों दलों का वर्णन केशव ने उसी मनोयोग से किया है। यहाँ यह निर्णय कठिन हो जाता है कि राम-दल अधिक बलवान है कि रावण-दल। रावण का एक पराक्रम देखें—

सूरज मुसल नील पट्टिश परिघ नल,
जामवंत असि हनू तोमर सँहारे हैं।
परसा सुखेन कुंत केसरी गवय शूल,
विभीषण गदा, गज भिन्दिपाल टारे हैं।
मोगरा द्विविद, तार कटरा, कुमुद नेजा,
अंगद शिला गवाक्ष विटप विदारे हैं।
अंकुश-शरभ चक्र दधिमुख शेष शक्ति,
बाण तीन रावण श्री रामचन्द्र मारे हैं।
(१६ : ४६)

युद्ध-क्षेत्र की भयंकरता और लोमहर्षकता का वर्णन भी कवि-परिपाटी के अनुरूप करने में केशव समर्थ हुए हैं:—

पुंज कुञ्जर शुभ्र स्यन्दन शोभिजे सुठि शूर।
ठेलि ठेलि चले गिरी शनि पेलि शोणित पूर।
ग्राह तुंग तुरंग कच्छप चारु चर्म विशाल।
चक्र से रथचक्र पैरत वृद्ध गृद्ध मराल।
केकरे कर बाहु मीन गयन्द शुण्ड भुजंग।
चीर चौंर सुदेश केश शिवाल जानि सुरंग।
बालुका बहु भाँति हैं मणिमाल जाल प्रकाश।
पैरि पार भये ते द्वै मुनिबाल केशवदास।—(३७ : २-३)

[तुरंग=ग्राह; चर्म (ढाल)=कच्छप, रथचक्र=चक्रवाक; वृद्धगृद्ध=हंस, कर=केकड़े; बाहु=मछली, गयन्द-शुण्ड= भुजंग, चीर-चौर-केश=शैवाल (काई)-मणि-जाल= बालुका]

केशव परशुराम-प्रसंग तथा रावण-सीता-संवाद प्रसंग में, राम और सीता के रौद्र रूप के चित्रण में सफल हुए हैं—

(१) भगन भयो भव धनुष साल तुमको अब सालौं।
वृथा होइ विधि सृष्टि ईस आसन ते चालौं।
सकल लोक संहरहुँ सेस सिर ते धर डारौ।
सप्तसिन्धु मिलि जाहिं होंहि सबही तम भारौ।
अति अमल ज्योति नारायणी कहि केसव बुझि जाहि बरु।
भृगुनन्द सँभरु कुठार मैं कियो सरासनयुक्तशरु। (७: ४२)

(२) अति तनु धनु रेखा नेक नाकी न जाकी।
खल सर खर धारा क्यों सहै तिच्छ ताकी।
बिड़कन घन घूरे भच्छि क्यों बाज जीवै।
सिव सिर ससि श्री को राहु, कैसे सो छीवै।

उठि उठि सठ ह्याँ ते भागु तौ लौं अभागे।
मम वचन विसर्पी सर्प जो लौं न लागे।
विकल सकल देखौं आँसु ह्वी नाश तेरौ।
निपट मृतक तोकौं रोज मारै न मेरौ।
(१३ : ६२–६३)

भयानक रस

राजसी प्रताप और शौर्य्य-वर्णन के अनेक अवसर केशव को उपलब्ध हुए हैं और अपने वर्णन-कौशल का समुचित उपयोग भी वे कर सके हैं। ऐसे प्रसंग हैं :

(१) दशरथ-राज्य में अयोध्या-वर्णन—(प्रथम प्रकाश)
(२) धनुष-यज्ञ में धनुषभंग का शब्द–(पाँचवाँ प्रकाश)
(३) राम-परशुराम संवाद प्रसंग— (सातवाँ प्रकाश)
(४) लंका-दहन प्रसंग— (चौदहवाँ प्रकाश)
(५) राम का सेना-प्रयाण— (पन्द्रहवाँ प्रकाश)
(६) रावण-राजसभा वर्णन— (सोलहवाँ प्रकाश)

धनुष-प्रसंग

प्रथम टंकोर झुकि झारि संसार मद,
चण्ड कोदण्ड रह्यो मण्डि नवखण्ड को।
चालि अचला अचल घालि दिगपाल बल
पालि ऋषिराज के वचन परचण्ड को।
सोधु दै ईश को बोधु जगदीश को
क्रोध उपजाय भृगुनन्द बरिवण्ड को।
बाधि बर स्वर्ग को साधि अपवर्ग,
धनुभंग को शब्द गयो भेदि ब्रह्मण्ड को। (५ : ४३)

परशुराम-प्रसंग

वर बाण शिखीन अशेष समुद्रहि सोखि सखा सुख ही तरिहौं।
अरु लंकहि औटि कलंकित की पुनि पंक कनंकहि की भरिहौं।
भल भूँजि कै राख सुखै करिकै दुख दीरघ देवन को हरिहौं।
सितकण्ठ के कण्ठन को कठुला, दसकण्ठ के कण्ठन को करिहौं।
(७ : ८)

बोरौं सबै रघुवंश कुठार की धार में बारन बाजि सरत्थहिं।
बान की वायु उड़ाय के लच्छन लच्छ करौं अरिहा समरत्थहिं।
रामहि बाम समेत पठै वन, कोप के भार में भूँज भरत्थहिं।
जो धनु हाथ धरै रघुनाथ तो आजु अनाथ करौं दसरत्थहिं।
(७ : १२)

रावण-राजसभ-प्रसंग

महामीचु दासी सदा पाँव धोवै।
प्रतीहार है कै कृपा सूर जोवै।
क्षपानाथ लीन्हें रहे छत्र जाकौ।
करैगो कहा शत्रु सुग्रीव ताकौ।
(१६ : २२)

लंका-दहन में राक्षसियों और राजरानियों का पलायन भी दर्शनीय है:

चलीं भागि चौहूँ दिसा राजरानी।
मिलीं ज्वाल-शाला फिरैं दुःखदानी।
(१४ : ११)

परन्तु यह तुलसी की 'कवितावली' के वर्णन की समता नहीं कर सका।

अंगद के समझा-बुझाकर व्यर्थ लौट आने पर भी जब

राम की सेना लंका की ओर प्रयाण करती है तो उसका वर्णन अत्यन्त प्रभावपूर्ण है—

कुंतल ललित नील भ्रकुटी धनुष नैन,
कुमुद कटाक्ष बान सबल सदाई है।
सुग्रीव सहित तार अंगदादि भूषनन,
मध्य देश केसरी सुगज गति आई॥
विग्रहानुकूल सब लक्ष लक्ष ऋक्षबल,
ऋक्षराज मुखी मुख केसोदास गाई है।
रामचन्द्र जू की चमू, राजश्री विभीषन की,
रावण की मीच दरकूच चाल आई।
(१५ : ३६)

अंगद रावण की सभा में जाकर रावण का सर्वव्यापी आतंक देखते हैं, जहाँ प्रतिहार दिव्य शक्तियों को डाँट-फटकार रहा है:

पढ़ौ विरंचि मौन, वेद जीव सोर छंडि रे।
कुबेर बेर के कही न यक्ष भीर मंडि रे।
दिनेश जाय दूर बैठि नारदादि संग ही।
न बोलु चन्द मन्द बुद्धि इन्द्र की सभा नहीं।
(१६ : २)

छन्द की तीव्रगति ने आतंक की व्यंजना को बढ़ा दिया है।

हास्य

हास्य के प्रसंग 'रामचन्द्रिका' में क्वचित ही आ सके हैं। राम-परशुराम भेंट प्रसंग में परशुराम के स्वरूप को देखते ही अलौकिक ऋषिगण का पलायन और नारीरूप-सज्जा किंचित हास्य की सृष्टि करता है।—

मत्त दंति अमत्त ह्वै गये देखि देखि न गज्जहीं।
ठौर ठौर सुदेश केसव दुंदुभी नहीं बज्जहीं।
डारि डारि हथ्यार सूरज जीव लै लै भज्जहीं।
काटि के तन आन एकहि नारि भेषन सज्जहीं।
(७ : २)

'रामचरितमानस' में तुलसी ने इस प्रसंग में पर्याप्त हास्य सृष्टि की है परकेशव केवल एक दो स्थल पर इसका आभास दे सके हैं:— टूटै टूटनहार तरु वायुहिं दीजत दोष।
त्यों अब के धनुष कों हम पर कीजत रोष।

तथा—

लक्ष्मण के पुरिखान कियो पुरुषारथ सो न कह्यौ परई।
वेष बनाय कियो बनितान को देखत केशव ह्यौ हरई॥

करुणा

करुणा के प्रसंग राम-जीवन में अनेक हैं, परन्तु कतिपय प्रसंगों के अतिरिक्त केशव उनमें सफल नहीं हो सके। जिन प्रसंगों में केशव की प्रतिभा कुंठित हो गई वे हैं—अयोध्या से राम-गमन का प्रसंग, अयोध्या में भरतागमन प्रसंग, चित्रकूट में रामभरत मिलन प्रसंग, सोता-बनवास प्रसंग, परन्तु जिनमें सफल हुई वे हैं—लक्ष्मण शक्ति प्रसंग और मेघनाद मरण प्रसंग। जैसे लक्ष्मण-मूर्च्छा के समय राम पाठक का हृदय आर्द्र करते हैं, वैसे ही मेघनाद वध के अवसर पर रावण भी रो उठता है—

आजु आदित्य जल, पवन-पावक प्रबल,
चंद आनंद यम त्रास जग को हरो।
गान किन्नर करौ,नृत्यगन्धर्व, कुल यक्षविधि,
लक्ष उर, यक्षकर्दम धरो।

ब्रह्म रुद्रादि दै, देव तिंहलोक के,
राज को जाय, अभिषेक इन्द्रिह करौं।
आजु सियराम दै, लंक कुल दूषणहि,
यज्ञ को जाय सर्वज्ञ विप्रहु धरौं। (१६ : ३)

इस अप्रस्तुत प्रशंसा द्वारा कवि ने बड़े कौशल से रावण की मर्मान्तक पीड़ा चित्रित की है।

बीभत्स

हनुमान के इन्द्रजीत (मेघनाद) द्वारा वन्दी होने पर रावण का आदेश बीभत्स का व्यंजक है—

कोरि कोरि यातनानि फोरि फोरि मारिये।
काटि काटि फारि मांसु बाँटि बाँटि डारिये।
खाल खैंचि खैंचि हाड़ भूँज भूँज खाहुरे।
फोरि टाँगि रुंड मुंड लै उड़ाइ जाहुरे।
(१४ : २)

भक्ति और वात्सल्य

'रामचन्द्रिका' में राम का जीवन कैशोर काल से प्रारंभ में हुआ है, बाल्यकाल का चित्रण उसमें नहीं है, अतः वात्सल्य के प्रसंग केशव की रामचन्द्रिका में नहीं आ सके। राम को वन के लिए विदा होते समय कौशल्या-दशरथ आदि के विलाप में कवि ऐसा कर सकता था किन्तु न जाने केशव को इसमें रुचि क्यों न थी?

लक्ष्मण को राम-रावण-युद्ध में मूर्छित देखकर राम का वात्सल्य पूर्ण हृदय द्रवित हुआ और उनके अनुभावों का संकेत केशव कर सके हैं—

लक्ष्मण राम जहीं अवलोक्यो
नैनन सों न रह्यो जल रोक्यो,
बारक लक्ष्मण मोहि बिलोकौ
मोकहँ प्राण चले तजि, रोकौ
हौं सुमिरौं, गुण केतिक तेरे।
सोदर पुत्र सहायक मेरे।—(१७:४३-४४)

परन्तु राम की यह व्यथा-वेदना वात्सल्य का अतिक्रमण करके करुणा के क्षेत्र में सञ्चरण कर गई है और शोक की व्यंजक हो गई है।

इसी प्रकार रावण अपने पुत्र-मेघनाद के मरने पर हृदय से क्रन्दन कर उठा है—

आजु आदित्य जल, पवन पावक प्रबल,
चंद आनन्द मय त्रास जग को हरौ।
गान किन्नर करौ, नृत्य गन्धर्व कुल,
यक्ष विधि लक्ष उर, यक्ष कर्दम धरौ।
ब्रह्म रुद्रादि दै, देव तिंहु लोक के,
राज को जाय अभिषेक इन्द्रहिं करौ।
आजु सिय राम दै लंक कुल दूषणहिं,,
यज्ञ को जाय सर्वज्ञ विप्रहु वरौ।
(१६ : ३)

केशव को भक्त कहना भक्तों का अपमान करना है। सच्चे भक्त न होने के कारण भक्तिभावना के छन्द केशव की लेखनी से प्रसूत नहीं हो सकते थे। केशव की भक्ति केवल राम-स्तुति और ज्ञेय-वन्दना तक ही सीमित है :

पूरण पुराण अरु पुरुष पुराण परिपूरण,
बतावें न बतावें आन उक्ति को।

दरशन देत जिन्हें दरशन समुझैं न,
　　　नेति नेति कहैं वेद छाँड़ि आन युक्ति को ॥
जानि यह केशौदास अनुदिन राम राम,
　　　रटत रहत न डरत पुनरुक्ति को ।
रूप देहि अणिमाहिं गुण देहि गरिमाहिं,
　　　भक्ति देहि महिमाहिं नाम देहि मुक्ति को ॥
(१ : २)

सरस्वती की वंदना भी उत्कृष्ट है—

वर्णैं पति चार मुख पूत वर्णैं पाँच मुख
नाती वर्णैं सट मुख तदपि नई नई । (१ : २०)

राम की यह वन्दना तुलसीदास की स्मृति दिला देती है :

जिनको यश हंसा जगत प्रशंसा मुनि जन मानस रन्ता ।
लोचन अनुरूपिनि श्याम सरूपिनि अंजन अंजित संता ।
कालत्रय दरसी निर्गुण परसी होत विलम्ब न लागै ।
तिनके गुण कहिहौं सब सुख लहिहौं पाप पुरातन भागै ।
(१ : २०)

शान्त रस

शान्त रस के उद्दीपन में सांसारिक वासना-विलास और माया के आकर्षण की पूर्ण भर्त्सना निहित है । 'निर्वेद' (वैराग्य) उसका स्थायीभाव है । 'निर्वेद' के लिए एक विशेष परिस्थिति अपेक्षित है । राम-जीवन में ऐसे एक-दो स्थलों को छोड़ कर नहीं है । अत्रि मुनि के आश्रम में अत्रि-पत्नी अनसूया के रूप-चित्रण में केशव 'निर्वेद' भाव की सुन्दर व्यंजना कर सके हैं—

सिर सेत विराजै, कीरति राजै, जनु केशव तप-बल की ।
तनु वलित पलित जनु सकल वासना निकरि गई थल-थल की ।

काँपति शुभ ग्रीवा, सब अँग सीवाँ देखत चित्त भुलाहीं।
जनु अपने मन प्रति यह उपदेशित या जग में कछु नाहीं।
(१६ : ५)

पंचवटी का वर्णन परुषावृत्ति के प्रभाव से शान्त रस में व्याघात कर उठा है अन्यथा वह भी वैराग्य और शांति की व्यंना करता—

सब जाति फटी दुख की दुपटी, कपटी न रहै जहँ एक घटी।
निघटी रुचि,मीचु घटी हू घटी जग जीवजतीन की छूटी तटी।
अघ ओघ की बेरी कटी विकटी निकटी प्रकटी गुरु ज्ञान गटी।
चहुँ ओरन नाचति मुक्ति नटी गुन धूरजटी वन पंचवटी।
(११ : १८)

लौकिक प्रभुत्व के अहंकारी भोग-विलासी रावण को अंगद की विगर्हणा भी निर्वेद का अंकुर उत्पन्न कराने में सक्षय है—

पेट चढ्यौ पलना पलका चढ़ि,
पालकि हू चढ़ि मोह मढ्यो रे।
चौक चढ्यौ चित्रसारि चढ्यौ,
गजबाजि चढ्यौ गढ गर्व चढ्यो रे।
व्योम विमान चढ्योई रह्यो,
कहि केशव सो कबहूँ न पढ्योरे।
चेतत नाहिं रह्यौ चढ़ि चित्त सों,
चाहत मूढ़ चिता हू चढ्यो रे॥ (१६ : २४)

परन्तु उसका परिपाक हुआ है इस उक्ति में—

हाथी न साथी न घोरे न चेरे न गान ठाऊँ को ठाऊँ विलै है।
तात न मातु न पुत्र न मित्र न वित्त न तीय कहीं संग रैहै॥

केसव काम को राम विसारत और निकाम न कामहि ऐहै।
चेति रे चेति अजौं चित अंतर अंतक लोक अकेलोइ जैहै।

(१६ : २६)

शृंगार-रस

'रसिक-प्रिया' रीति-ग्रन्थ में आचार्य केशवदास ने शृंगार रस को ही प्रमुख मान कर अन्य रसों को उन्हीं का अंगभूत मान लिया है। यह स्थापना चाहे विज्ञ जनों को मान्य हो या नहीं, शृंगार रस के प्रति केशव का अनुराग स्पष्ट है। इसी शृंगार केसाथ कवि केशवदास ने 'रामचंद्रिका' में न्याय नहीं किया—यह चिन्तनीय है। शृंगार-रस राज-दरबारी रीति-कवियों के हाथ में जाकर अत्यन्त हीन कोटि का हो गया है। हृदय की चिरन्तन वृत्ति प्रेम के रूप में अंकित न होकर वह शारीरिक वासना-विलास-के रूप में चित्रित किया जाने लगा। शृंगार के शिष्ट और समीचीन चित्रण के लिए हमें तुलसीदास की ओर देखना पड़ता है। जनक की पुष्पवाटिका में राम-सीता का परस्पर-दर्शन और पूर्वानुराग शुद्ध सात्त्विक है :

(राम)—कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि।
कहत लखन सन राम हृदय गुनि।
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही।
मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही।
अस कहि फिरि चितये तेहि ओरा।
सिय मुख ससि भये नयन चकोरा।

(सीता)—भये बिलोचन चारु अचंचल।
मनहुँ सकुचि निमि तजेउ दृगंचल।
थके नयन रघुपति छबि देखी।
पलकन्हहूँ परिहरीं निमेषी।

अधिक सनेह विवश भई भोरी।
शरद शशिहिं जनु चितव चकोरी।
लोचन मगु रामहिं उर आनी।
दीन्हें पलक कपाट सयानी।

(रा. च. मा. बालकाण्ड)

राम-सीता के लग्नोत्सव में भी केशव ऐसा प्रसंग न ला सके कि 'शृङ्गार' की व्यंजना करें। वन-यात्रा में अन्त में कवि ऐसा प्रसंग खोज सका है पर वहाँ उनकी ऐसी शारीरिक शृङ्गारिक चेष्टाएँ उसने दिखलादी हैं जो, कम से कम, सात्त्विक नहीं जान पड़ती—

मग को श्रम श्रीपति दूर करैं सिय को शुभ वाकल अंचल सों।
श्रम तेऊ हरैं तिनको कहि केशव चँचल चारु दृगंचल सों।
(६ : ४४)

शृङ्गार के वियोग पक्ष (विप्रलंभ) में भी केशव की कला जैसे कुण्ठित हो गई हो। राम और सीता की विरह-दशाओं का वर्णन उनकी पीड़ा की व्यंजना करने में असमर्थ है। चंपक, अशोक-केतक केतकी, गुलाब, करुणा, आदि वृक्षों से राम की उक्ति केशव की वाग्विदग्धता के भार से बोझिल हो उठी है द्रवित नहीं कर सकी और जब प्रियतमा सीता का उत्तरीय उन्हें मिलता है तब तो वे विलासी मानव की भाँति अपनी काम-क्रीड़ा का स्मरण करने लगते हैं :

बन्धन हमारो कामकेलिको कि ताड़िबे को,
बाजनो विचार को व्यजन विचारु है।
मान की जवनिका कै कंजमुख मूँदिबे को,
सीताजू को उत्तरीय सब सुख सारु है। (१२:६२)

जब 'सीताजू को उत्तरीय सब सुख सारु है' तो सीता की खोज की आवश्यकता क्या है ? वस्तुतः तो, कवि-परिपाटी और मानव मनोविज्ञान दोनों के अनुसार प्रिय की वस्तुओं को विरहोद्दीपक होना चाहिए। उधर सीता को भी राम की मुद्रिका 'दुःखहारि' है, उर 'सीतकारि' है:—

यह सूर किरण तम-दुःख-हारि।
ससि-कला किधौं उर-सीत-कारि। (१२ : ७६)

केशव इस समय जान पड़ता है, मानव मनोविज्ञान और मानव अनुभूति-शून्य हो गये थे।

संवाद और चरित्र-चित्रण

प्रबन्ध-काव्य जीवन के चित्रपट पर व्यक्तियों का चरित्र-चित्रण है। नाटककार केवल चरित्र की रेखाओं को अंकित करता है, परन्तु प्रबन्धकाव्यकार घटनाओं और वर्णनों को पृष्ठ-भूमि बनाकर पात्रों को विशिष्ट चरित्र के पृथक् रंगों में अभिनय करता हुआ दिखाता है। चरित्र-चित्रण के भी दो साधन हैं— प्रत्यक्ष और परोक्ष। प्रत्यक्ष चित्रण में कवि को प्रवक्ता होना पड़ता है जो कथा में अवश्य समीचीन प्रयोग है परन्तु काव्य में वह अरुचिकर हो जाता है। दूसरे, परोक्ष साधन (सम्भाषण अथवा कथोपकथन) द्वारा चित्रण की रेखायें खींचना कवि के लिए उचित, आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है। केशवदास ने सम्भाषण द्वारा चरित्र-चित्रण में पर्याप्त सहायता ली है और यदि वह कहें कि केशवदास सम्भाषण में सफल हुए हैं तो अतिरंजन न होगा। केशव के चरित्र-चित्रणों में घटना-व्यापारों का उतना मूल्य नहीं है जितना सम्भाषणों का। 'रामचन्द्रिका' में निम्नलिखित संवाद उल्लेखनीय है :

१. दशरथ-विश्वामित्र-वशिष्ठ संवाद
२. सुमति-विमति संवाद
३. रावण-बाण संवाद
४. विश्वामित्र-जनक संवाद
५. परशुराम-वामदेव संवाद
६. परशुराम-राम संवाद
७. कैकेयी-भरत संवाद
८. हनुमान-रावण संवाद
९. रावण-अंगद संवाद
१०. सीता-रावण संवाद
११. लवकुश-विभीषण संवाद ।

केशव की 'रामचन्द्रिका' 'हनुमन्नाटक' और 'प्रसन्नराघव' से प्रभावित है अतः उसमें नाटकीय संवादों की ही प्रधानता है। काव्य में नाटकीय विधिविधान नाटकीयता तो ला देता है परन्तु प्रबन्ध-वर्णन को कुंठित कर देता है। केशव के संवाद एक दो को छोड़कर पात्रोपयुक्त नीतिपूर्ण, वाग्विदग्धता पूर्ण अवश्य हैं परन्तु जब वे एक ही छन्द में कई पात्रों के सम्भाषण को समाविष्ट कर देते हैं तो पाठक उस वर्णन से वंचित रह जाता है जो प्रबन्धकार पात्रों के हाव-भाव और अनुभाव के चित्रण के लिए नियोजित करता है।

केशव के सब पात्र राजनीति, कूटनीति और वाग्विलास में प्रवीण हैं। राज-दरबार के वातावरण में कवि केशव ने यही सब अर्जन किया था जिसका विसर्जन जिन्होंने अपने इन सम्भाषणों में किया, इसलिए स्वभावतः उनमें ये त्रुटियाँ आ गईं जो व्यक्ति के मर्म तक प्रवेश करनेवाले भावुक कवि के काव्य में नहीं आनी चाहिए थीं। दशरथ विश्वामित्र संवाद में

विश्वामित्र राम के लोकोत्तर शौर्य और पराक्रम द्वारा दशरथ को प्रभावित करके राम-लक्ष्मण को ले जाना चाहते हैं। दशरथ के हृदय के कोमल स्थल में होने वाली पीड़ा को सहलाने के स्थान पर वे जैसे उस पर नमक छिड़कते हैं :

झूठे सों झूठेहि बाँधत हो मन।
छाँड़त हो मन सत्य सनातन।

"सुमति विमति संवाद" 'प्रसन्नराघव' के नुपूरक और मंजीरक संवाद का रूपान्तर ही है और वह केवल सीता-स्वयम्वर में आए हुए मल्लिक, काश्मीर, कांची, मत्स्य, सिन्धु आदि प्रदेशों के नरेशों के बलविक्रम का आलंकारिक वर्णन के लिए ही नियोजित हुआ है और उसका कथा के पात्रों के चरित्र से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसी प्रकार 'रावण बाण संवाद' भी अनुकरण मात्र है और प्रायः अवसरोपयुक्त भी नहीं है। उससे केवल एक ही उद्देश्य-सिद्धि होती है कि रावण और बाण दोनों धनुपस्पर्श किए बिना ही कैसे चले गये।

राम परशुराम संवाद में केशव ने राम और परशुराम के चरित्रों में उचित रंग भरे हैं। वामदेव के द्वारा राम के पराक्रम का परिचय पाकर और अपने गुरु महादेव के पिकनाक भंग की सूचना पाकर सहसा क्षुब्ध होकर रुद्र बन जाते हैं :

बोरों सबै रघुवंश कुठार की धार में बारन बाजि सरत्थहिं।
बान की वायु उड़ाइ के लच्छन लच्छि करौं अरिहा समरत्थहिं।
रामहिं बाम समेत पठै बन कोप के भारमें भूँजौ भरत्थहिं।
जो धनु हाथ धरै रघुनाथ तो आज अनाथ करौं दशरत्थहिं।
(७ : १२)

परन्तु राम की सौम्य मूर्ति के दर्शन से उनके मनका क्रोध

वैर जिय मानि वामदेव को धनुष तोरो,
जानत हौं बीस बिसै रामभेष काम है। (१७ : १४)

की भ्रान्ति में पिघलता हुआ प्रतीत होता है। राम की विजयशीलता और शिष्टाचार ने परशुराम के क्रोध को भी संयत कर दिया है। परशुराम का :

तोरि सरासन शंकर को सुभ सीय स्वयम्वर माँझ वरी।
ताते बढ़्यो अभिमान महा मन मेरियो नेक न संक करी।
(७ : १९)

यह क्रोध राम के विनयपूर्ण अपराध-स्वीकार :

सो अपराध परौ हमसों अब क्यों सुधरै तुमही धौं कहौ। (,,)

के कारण अभी भी पूर्ण शान्त नहीं हुआ है; वरन् परशुराम अपने कुठार को सम्बोधित करते हुए

तो लौं नहीं सुख जो लग तू रघुवीर को शोण सुधा न पियो रे।

की चुनौती देते रहे। भरत भी, तुलसी के लक्ष्मण की भाँति, कुछ चुभती हुई बात कह गये—

बोलत कैसे भृगुपति सुनिये सो कहिए तन मन बनि आवै।
आदि बड़े हो बड़पन रखिये जा हित तू सब जग जस पावै।
चन्दन हू में अति तन घसिए आगि उठै यह गुनि सब लीजै।
हैहय मारो नृपजन सँहरे, सो यश ले किन जुग जुग जीजै।
(७ : २२)

इस पर तो परशुराम अत्यन्त क्रोधित हो उठे और भरत को अपनी धनुर्विद्या दिखाने की चुनौती दे उठे। तीनों भाइयों ने धनुष हाथ में ले लिये और तब राम ने ही उनको

भगवन्तन सों जीतिए कबहुँ न कीन्हें शक्ति।
जीतिय एकै बात तें केवल कीन्हें भक्ति। (७ : २५)

के सदुपदेश द्वारा शान्त किया। राम के इस शील से परशुराम

भी प्रभावित हुए परन्तु उनकी दृष्टि में तीनों भाइयों की क्षुद्रता भी स्पष्ट हो गई। शत्रुघ्न और लक्ष्मण ने फिर भी अपनी चंचलता न छोड़ी और परशुराम का क्रोध इस सीमा तक पहुँच गया कि

कोटि करो उपचार न कैसहु मीचु बचौ।

परशुराम अन्त में महादेव के समझाने पर ही शान्त हुए।

'कैकेई भरत संवाद' केशव का वह संवाद है जो इतना अपर्याप्त है कि उससे पात्रों के चरित्रों की रूपरेखाएँ स्पष्ट नहीं हुई हैं। तुलसीदास ने कैकेयी और मंथरा के संवाद द्वारा कैकेयी के चरित्र को ऊँचा उठाया है; परन्तु केशव ने इस संवाद को संक्षिप्त करके कैकेयी को वस्तुतः 'भर्तासुतविद्वेषिनी' सिद्ध कर दिया है।

'*रावण सीता-संवाद*' द्वारा केशवदास ने सीता के उज्ज्वल चारित्र्य-तेज का और इसके विपरीत रावण की दुष्टता और दुश्शीलता का चित्रण किया है। राक्षसराज रावण के—

अदेवी नृदेवीन की होहु रानी।
करें सेव बानी मघोनी मृडानी।
लिए किन्नरी किन्नरी गीत गावें।
सुकेशी नचैं उर्वशी मान पावें। (१३ : ६०)

के प्रलोभन को सीता जैसी सुशीला चरित्र शीला ही ठुकराकर

थिड़कन घन घूरे भक्षि क्यों बाज जीवै।
सिव सिर शशि श्री को राहु कैसे सु छीवैं।

जैसे कठोर शब्दों में भर्त्सना कर सकती है।

'रावण–अङ्गद संवाद' के द्वारा' केशव ने रावण के चारित्र्य के रंगों को भरने में सहायता ली है। तुलसीदास ने भी रावण अंगद

संवाद नियोजित किया है परन्तु 'रामचरितमानस' में यह संवाद राजसभा का कलंक जान पड़ता है। केशवदास ने इस संवाद में राजसभोचित मर्यादा का पूरा पालन किया है। 'रामचरितमानस' में अंगद-रावण की बातचीत न तो अंगद के राजदूतत्व के अनुरूप है और न राक्षसराजत्व के। 'रामचरितमानस' के अंगद रावण की सभा में पहुँचते ही उसको

दसन गहहु तृन कंठ कुठारी।
परिजन संग सहित निज नारी।
सादर जनकसुता करि आगे।
इहि विधि चलहु सकल भय त्यागे।

(लंकाकांड : रा.च.मा.)

का अपमानजनक उपदेश देने लगते हैं। राम वीर थे, पराक्रमी थे और वे राक्षसों का सर्वनाश करने के लिए अवतरित हुए थे—बस इसी आधार पर तुलसीदास अंगद की जिह्वा पर बैठकर ऐसे शब्द कहलाने लगे। राम को केवल सीता को रावण से वापिस माँगना था; परन्तु अंगद मानों अपनी ओर से इतना नमक-मिर्च और मिला देते हैं और रावण भी अपमान न सह-कर अंगद को मूर्ख और वंशघाती आदि अपशब्दों में ललकारता है। दोनों की तू तू मैं मैं अत्यन्त निम्न कोटि की हो गई है। इस 'बत-बढाव' में राजसभा की मर्यादा धूल में मिल गई है परन्तु केशवदास ऐसे शिष्टाचारों के पण्डित थे और उन्हें प्रकट करने में प्रवीण। इनके अंगद तुलसी के अंगद की तरह रावण से :

मरु गरु काटि निलज कुलघाती।
बल विलोकि विहरति नहिं छाती।
रे तियचोर कुमारगगामी।
खलमलराशि मन्दमति कामी।

व्यक्तियों के चरित्रों का अंकन कर सके हैं। 'रामचन्द्रिका' में जब जब ऐसे प्रसंग आये हैं तब तब केशवदास उन्हें उपेक्षित कर गये हैं। राम, सीता, कौशल्या, कैकेयी, भरत, लक्ष्मण, रावण 'रामचन्द्रिका' की कथा के प्रधान पात्र हैं परन्तु केशव के काव्य से उनके चरित्रों के चित्र फीके या विरूप हो गये हैं। यदि वाल्मीकि और तुलसी की कथा से इन पात्रों का स्वरूप भारतीय जनता के मानस में पूर्व प्रतिष्ठित न हुआ होता तो केशवकी 'रामचन्द्रिका' उनका पूर्णचित्र प्रस्तुत करने में समर्थ नहीं हो सकती थी। केशव ने केवल रूपरेखाओं में कहीं कहीं तूलिका का स्पर्श दे दिया है। कुशल चित्रकार की भाँति रंग जुटाना और उन्हें मनोयोग से भरना उन्हें रुचिकर नहीं हुआ।

राम और भरत

केशव के राम धीर-वीर और विद्या विनय सम्पन्न हैं। परंतु वे तुलसीदास के राजत्यागी राम नहीं है वे उस संशयालु राजा की भाँति हैं जो राजपाट छोड़कर चौदह वर्ष के लिए वन जाते समय भी भरत जैसे भाई के प्रति सशंक है। लक्ष्मण को साथ चलने से मना करते हुए वे उन्हें भरत से सावधान रहने और पिता तथा पिता के राज्य की रक्षा करने का मन्त्र दे रहे हैं :

धाम रहो तुम लक्ष्मण राज की सेव करौ।
मातन के सुनि तात सुदीरघ दुःख हरौ।
आय भरत्थ कहाँ धौं करैं जिय भाय गुनौ।
जो दुख देयँ तो लै उरगौ यह सीख सुनौ। (६ : २७)

भरत के प्रति यह शंका तुलसीदास के राम ने कभी नहीं की। चित्रकूट-प्रसंग में भी जब भरत राम को लौटा लाने के लिए सेना के साथ आ रहे हैं तो लक्ष्मण उनके प्रति सशंक हो उठे

हैं। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि अब भगवान सूर्य के कुल में कलह होने जा रही है :

अपने कुल को कलह क्यों देखहिं रवि भगवंत।
यह जानी अन्तर कियो मानो मही अनन्त।

लक्ष्मण के "मारि डारौं अनुज समेत यहि खेत आजु" और 'भरतहिं आजु राजु देउँ प्रेतपुरकों' की प्रतिज्ञा द्वारा सीमा-उल्लंघन करते हुए देखकर भी राम का चुप रहना राम के चरित्र को कुछ धूमिल कर देता है। तुलसीदास के राम जिस स्नेह और श्रद्धा से भरे हुए लक्ष्मण की शंका

भरतहि होइ न राजुमदु विधि हरिहर पदपाय।
कबहु कि काँजी सीकरनि छीर सिन्धु विनसाय ?

दूर करते हैं वह अत्यन्त उदात्त है। परन्तु केशव के राम भरत के घरको चलिए अब श्रीरघुराई, जनहो तुम राजसदा सुखदाई। वचन सुनकर ही कह सके—

राजदियो हमको वन रूरो। राज दियो तुमको परिपूरो।
सो हमहूँ तुमहूँ मिलि कीजे। बापको बोल न नेकहु छीजे॥

केशव के भरत नीतिज्ञ हैं और राम से नीति की दुहाई देते हुए मद्यपी, स्त्रीजित, वातुल और सन्निपातग्रस्त पिता का वचन-भंग करने का ही आग्रह करते हैं। यह स्पष्ट छोटे मुँह बड़ी बात है। प्रेम और अनुनय-विनय के बल पर राम को मनाने के स्थान पर

ईश-ईश जगदीश बखान्यो। वेदवाक्यबल तें पहिचान्यो।
ताहि मेटि हठि कै रजिहों जौ। गंगतीर तन को तजि हों तौ॥

का सत्याग्रह कर बैठना मिथ्याग्रह ही कहा जायगा।

सीता और राम

वाल्मीकि और तुलसीदास की सीताओं में यद्यपि मानवी और देवी का अन्तर है, परन्तु केशव की सीता तो पाठक के हृदय में विशेष ऊँचा-स्थान ही नहीं बना पाती। 'रामचरितमानस' का वन-प्रयाण के समय राम-सीता का सम्भाषण अत्यन्त मार्मिक है। राम और सीता दोनों परस्पर प्रेम से प्रेरित होकर वन न चलने और चलने के लिए इतना आग्रह करते हैं कि पाठक भावावेश से आप्लावित हो जाता है। 'रामचन्द्रिका में 'रामचरितमानस' का शतांश भी भावविभोर करनेवाली भावना प्रकट नहीं हुई है।

'रामचरितमानस' में वन में जाती हुई सीता रामचन्द्र के पदचिन्हों के बीच बीच में अपने पाँव रखती हुई चलती हैं:

प्रभुपद रेख बीच बिच सीता। धरति चरन मग चलति सभीता।

परन्तु 'रामचन्द्रिका' की सीता अपने पाँव को तप्त धूल से बचाने के लिए राम के 'पद-पंकज' (के चिन्हों) के ऊपर पाँव रखती हुई सुखपाती हुई चलती दिखाई गई हैं। यह वही सीता हैं जिन्होंने वन चलने के समय लक्ष्मण से कहा था?:

वायु को वहन, दिन दावा को दहन,
बड़ी बाड़वाअनल, ज्वाल जाल में रह्यो परै।
सहिहौं तपन ताप पर के प्रताप रघु-
वीर को विरह वीर! मो सों न सह्यो परै।
(६ : २६)

पहले केशव मौलिकता की झोंक में सीता से वीरोक्ति करवा गये हैं परन्तु पीछे उनकी कोमलता दिखाने के लोभ में इस वीरोक्ति का निर्वाह करवाना भूल गये हैं। तुलसीदास की

आराध्य देवी सीता वन में पति की अनेक प्रकार से सेवा-शुश्रूषा करने के लिए गई थीं :

सबहिं भाँति पियसेवा करिहौं।
मारग जनित सकल श्रम हरिहौं।
पाँय पखारि बैठि तरुछाहीं।
करिहौं बायु मुदित मन माहीं।
श्रमकन सहित स्याम तनु देखे।
कहँ दुख समउ प्रान पति पेखे।
सम महि तृन तरु पल्लव डासी।
पाय पलोटिहि सब निसि दासी।
(अयोध्या कांड रा.च.मा.)

और यदि चाहते तो तुलसीदास इस सेवा-शुश्रूषा के दर्शन भी पाठक को करवा सकते थे; परन्तु गोस्वामीजी ने जगत-पिता और जगत-माता को इन स्थितियों में देखना नहीं चाहा परन्तु केशवदास ऐसी मर्यादा नहीं जानते थे। उनके राम-सीता सामान्य नायक-नायिकाओं की भाँति एक दूसरे की सेवा करते हुए दिखाई देते हैं :

कहुँ बाग तड़ाग तरंगिनि तीर तमाल की छाँह विलोकि भली।
घटिका यक बैठत हैं सुखपाय बिछाय तहाँ कुस कास थली॥
मग को श्रम श्रीपति दूर करैं सियको सुभ बाकल अंचल सों।
श्रम तेउ हरैं तिनको कहि केशव चंचल चारु दृगंचल सों॥

एक स्थल पर तो राम की स्त्रैण प्रकृति दृष्टिगोचर होती है, जब उन्हें सीताजी का उत्तरीय देखकर अपने शृंगारिक विलासों की स्मृति जागरित हो उठती है :

पंजर के खंजरीट नैनन को केशोदास
कैधौं मीन मानस को जलु है कि जारु है।
अंग को कि अंगराग गेंडुआ कि गलसुई
किधौं कोट जीव ही को उर को कि हारु है।
बंधन हमारो कामकेलि को, कि ताड़िबे को
ताजनो विचार को, कै व्यजन विचारु है।
मान की जवनिका कै कंजमुख मूँदिबे कौ
सीताजी को उत्तरीय सब सुख सारु है।
(१२ : ६२)

राम सीता के लिए केवल भयंकर शरीरधारी होने के अपराध में विराध का वध कर डालते हैं—

विपिन विराध बलिष्ठ देखियो। नृप तनया भयभीत लेखियो।
तब रघुनाथ बाण कै हयो। निज निर्वाण पंथ का ठयो।
(११ : ८)

बिना किसी घोर अपराध के विचारे विराध का वध कर देना पारमार्थिक दृष्टि से उसके लिए भले ही मंगलकारी हो, लौकिक दृष्टि में राम का अपराध ही गिना जायगा।

अयोध्या लौट आने पर जब लोक-निन्दा सुनकर राम सीता-त्याग पर उतारू हैं तब जहाँ राम अपने मन की व्यथा अपने मन ही में रखकर सीता को हृदय पर पत्थर रखकर निर्वासित करते हुए विदित हैं वहाँ केशव ने उन्हें सीता को दण्ड देते हुए दिखाया है। निर्वासन की आज्ञा का पालन न करने पर राम भरत लक्ष्मण और शत्रुघ्न के प्रति क्रुद्ध हो उठे हैं :

लक्ष्मण जो फिर उत्तर देहो। शासन-भंग को पातक पैहो।
केशव के राम अपने भाई पर भी राजा की भाँति शासन करने

में अपना कर्त्तव्य समझते हैं, जैसे भाई और भाई का मधुर स्नेह-सम्बन्ध उनके निकट निरर्थक हो।

कौशल्या और कैकेयी

केशवदास ने दशरथ की इन दोनों रानियों को ईर्ष्यालु सौतों के रूप में देखा है। अपने पुत्र को राजसिंहासन दिलाने के लिए जैसे कैकेयी कोई उपाय सोच ही रही थी कि पिछले वचनों की उसे स्मृति हो आई और उसने

नृपता सुविसेस भरत्थ लहैं। बरषैं वन चौदह राम रहैं।

के दो वर माँग लिये। भरत के ननिहाल से लौटने पर भी कैकेयी अपनी संतति की ही प्रभुता के लिए राम को वनवास दिलाने का अपराध स्वीकार करती है। उधर कौशल्या भी सौतिया डाह से पीड़ित है और इसकी ध्वनि कौशल्या की इस कटूक्ति में प्रतिध्वनित है :

रहो चुप ह्वै सुत क्यों वन जाहु,
न देखि सकें तिनके उर दाहु॥

वह अपने बूढ़े पति की भर्त्सना कर उठी है—

लगी अब बाप तुम्हारेहि बाय।
करैं उलटी विधि कहि जाय। (६ : ८)

एक ओर कौशल्या के लिए पुत्र हैं और दूसरी ओर अयोध्या है, अयोध्या का राज है और भरत है—

मोहि चलो वन संग लिए। पुत्र तुम्हें मह देखि जिएँ।
औधपुरी महँ गाज परै। कै अब राज भरत्थ करैं।
(६ : १०)

रावण

'रामचन्द्रिका' का रावण केशवदास की कृपा से पाठक को 'रामचरितमानस' के रावण से अधिक प्रभावित करता है। तुलसीदास के लिए राम आर्य-जाति के संरक्षक थे और राक्षसों के भार से पृथ्वी की रक्षा करने वाले जगदीश्वर। गीताके कृष्ण ने स्वयं का बार-बार पृथ्वी पर अवतार लेना घोषित किया है:—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत !
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ।
(४ : ७-८)

(ईश्वरावतार) राम इसी को चरितार्थ करने के लिये पृथ्वी पर आये हैं।—चाहत हौं भुव भार हर्यो सब। (१२ : १२) परन्तु जहाँ रावण तुलसीदास के लिए ईश्वरद्रोही और वध्य है। उसे उनकी दृष्टि में कभी आदर नहीं मिला वहाँ केशव के हृदय में इस राक्षस के लिए भी स्निग्ध कोना सुरक्षित है। उसके प्रताप का वर्णन करने में केशवदास ने अपनी सारी प्रतिभा जुटादी। उसके चारित्र्य के कई उज्ज्वलपक्ष भी उन्होंने हमें दिखाये। एक स्थल पर रावण के दुख को देखकर उन्होंने पाठक को द्रवित भी किया है। अपने पुत्र मेघनाद के मर जानेपर वह जैसे पराजित होकर रुदन-क्रंदन करता हुआ जय कहता है—

आजु आदित्य जल पवन पावक प्रबल,
चंद आनन्दमय त्रास जग को हरौ।
गान किन्नर करौ नृत्य गन्धर्व कुल,
यक्ष विधि लक्ष उर यक्ष कर्दम धरौ॥

ब्रह्म रुद्रादि दै, देव तिहुं लोक के,
राज को जाय अभिषेक इन्द्रहि करौ।
आजु सिय राम दै, लंक कुल दूषणहि,
यज्ञको जाय सर्वज्ञ विप्रहि वरौ॥
(१६ : ३)

तो वस्तुतः पाठक रावण की मार्मिक पीड़ा की किंचित अनुभूति तक पहुँचता है। तुलसीदास की दृष्टि में रावण का मरण पूर्व-निश्चित है, इसे राम की सेना का छोटे से छोटा चर भी जानता है और इसलिए इसी बल पर अंगद रावण को ललकार सकता है परन्तु केशव रावण को महान् शक्तिशाली, पराक्रमी, कूटराज-नीतिज्ञ राजा के रूप में देखते हैं और उसकी सभा की भी उचित मर्यादा दिखाते हैं। रावण की यह गर्वोक्ति उसके शौर्य-प्रताप की व्यंजक है—

लोक लोकेश स्यों जो जु ब्रह्मा रचे,
आपनी आपनी सींव सो सो रहैं।
चारि बाहैं धरे विष्णु रक्षा करैं,
बात साँची यहै वेद बानी कहै।
ताहि भ्रूभंग ही देव देवेश स्यों,
विष्णु ब्रह्मादि दै रुद्रजू से हरै।
ताहि हौं छोड़ि कै पाँय काके परौं,
आज संसार तो पाँव मेरे परै॥ (१६:१०)

महामीचु दासी सदा पाइँ धोवै। प्रतीहार ह्वै कै कृपा सूर जोवै।
छपानाथ लीन्हें रहै छत्र जाको। करै गोकहा शत्रु सुग्रीव ताको।
सका मेघमाला शिखी पाककारी। करै कोतवाली महादंडधारी।
पढ़ै वेद ब्रह्मा सदा द्वार जाके। कहा बापुरो शत्रु सुग्रीव ताके।
(१६-२२-२३)

अंगद के प्रति रावण की यह साम-नीति भी देखिए—

नील सुखेन हनू उनके बल और सबै कपि पुंज तिहारे।
आठहु आठ दिसा बलि दै, अपनो पदु लै, पितु जा लगि मारे।
तोसे सपूतहिं जाय कै बालि अपूतन की पदवी पगु धारे।
अंगद संग लै मेरो सब दल आजुहिं क्यों न हतै बपु मारे।
(१६ : १५)

सहित लक्ष्मण रामहिं संहरौं। सकल वानर राज तुम्हैं करौं।
(१६:१८)

'रामचन्द्रिका' का बहिरंग-दर्शन

केशवदास मूलतः एक अलंकार-स्रष्टा आचार्य हैं, शुद्ध कवि नहीं। केशव की कविता की परिभाषा भी अलंकार से रूप ग्रहण करती है—

जदपि सुजाति सुलच्छनी सुवरन सरस सुवृत्त।
भूषन बिन न विराजही कविता वनिता मित्त ॥

परन्तु काव्य की आत्मा तो रस ही है। रामचन्द्रिका के अन्तरंग में रस की न्यूनता स्पष्ट है। यदि और किसी आधार पर रामचन्द्रिका को महाकाव्य पद से वंचित न किया गया तो कम से कम पूर्णतया रसात्मक न हो सकने के कारण तो यह अवश्य ही महाकाव्य की कल्पना को पूरा नहीं कर पाता। कवि के सामने महाकाव्य में अनेक वर्ण्य रहते हैं—

(१) चरित्रों का भावलोक
(२) कथावस्तु की घटनाएँ
(३) पात्रों और परिस्थितियों का स्वरूप

पात्रों और परिस्थितियों के स्वरूप-वर्णन में केशव एक अलंकार शास्त्री के नाते सफल चित्रकार कहे जा सकते हैं। 'राम-

चन्द्रिका' की कथावस्तु अत्यन्त व्यापक और विस्तीर्ण है और उसमें केशव को राज्यों, नगरों, वन-उपवनों, ऋतुओं, सरोवरों, नदियों, युद्धों, यात्राओं, विवाहों, बल-पराक्रम, सौन्दर्य और यौवन, मिलन, वियोग आदि राशि-राशि पदार्थों और परिस्थितियों के वर्णन का अवसर मिला है। इस दृष्टि से केशव की यह कृति दीन नहीं कही जा सकती। परन्तु केशव की यदि कोई असफलता है तो यही कि उन्होंने परिस्थितियों का वर्णन करते समय अवसर-अनअवसर, संगति-असंगति और श्लीलता-अश्लीलता का ध्यान नहीं रक्खा। जीवन के अपरिमेय चित्राधार में चित्रण करने के लिए पदार्थों और परिस्थितियों का अभाव कभी नहीं होता परन्तु किसके वर्णन का कितना मूल्य है यह निर्धारित करना कुशल कवि का काम है। महाकाव्य एक प्रबन्ध काव्य है। प्रबन्धकाव्य में मुक्तक वर्णनों का समन्वय और सामंजस्य कथावस्तु में लाना काव्यके सौष्ठव के लिए अत्यन्त आवश्यक है परन्तु खेद है कि केशवदास के ये बिखरे हुए चित्र किसी कुशल संयोजक कवि की तूलिका से अङ्कित नहीं हुए। कई स्थलों पर केशवदास के वर्णन एकरागता (Monotony) उत्पन्न कर देते हैं और कई स्थलों पर उनकी संगति पाठक की रुचि को विकृत कर देती है। अनेक स्थलों पर केशव ने अपने ज्ञान, अनुभव और अध्ययन का प्रसाद अपने 'कुपात्र' पात्रों के द्वारा पाठकों में वितरित करना चाहा है और फलस्वरूप पाठकों ने उसे ग्रहण करने से मना कर दिया है। नारी-धर्म और विधवा-धर्म का उपदेश राम का अपनी माता कौशल्या को देना उसी प्रकार अरुचिकर है जिस प्रकार सहोदर का राजनीति, मंत्री-धर्म आदि का निर्देश राम को करना अनुचित है; राम के द्वारा अगस्त्य मुनि से राज्यश्री की निन्दा उसी प्रकार असंगत है जिस प्रकार राम के द्वारा

विश्वामित्र और वशिष्ठ जैसे ज्ञानी मुनियों को बाल्य, यौवन और वृद्धावस्थाके दुखों का वर्णन करके विरक्तिका उपदेश देना। राम के राजतिलक के समय केशवदास का वशिष्ठ के मुख से राम-नाम का महात्म्य वर्णन करवाना भी इसी प्रकार कथावस्तु से विशेष सम्बद्ध नहीं है।

अलङ्कार-योजना

केशव ने अलंकार-योजना से 'रामचन्द्रिका' के पात्रों और परिस्थितियों का अंकन किया है और केवल इन्हीं के कारण यह काव्य स्मरणीय रहेगा। अयोध्या के दशरथ-राज्य का वर्णन केशव के आलंकारिक काव्य-कौशल का अच्छा उदाहरण है जहाँ श्लेष और मुद्रा, उत्प्रेक्षा और परिसंख्या के सफल प्रयोग हैं।

मुद्रा

जहाँ विद्याधरों, कलाधरों, गणपति, पशुपति, सेनापति, बुध, मंगल, गुरु, धर्मराज और सुर-तरंगिणी होने के कारण अवध-पुरी को स्वर्ग बनाया गया है—

कविकुल विद्याधर सकल कलाधर राज-राज वर वेष बने।
गणपति सुखदायक पशुपति लायक सूरसहायक कौन गने।
सेनापति बुधजन मंगल गुरुगण धर्मराज मन बुद्धि धनी।
बहु शुभ मनसा कर करुणामय अरु सुरतरंगिनी शोभसनी।
(१:४२)

श्लेष

जहाँ श्लेष के कारण राजहंस को विमान बनानेवाले अनेक विबुधों से संयुक्त होने कारण, सुदक्षिणा के बल होने के कारण बहुवाहिनी के पति होने के कारण, दान दान प्रिय होने के

कारण तथा भगीरथ-पथगामी होने के कारण ही राजा दशरथ ब्रह्मा, मेरु, दिलीप, सागर, सूर्य और गंगाजल बन जाते हैं—

विधि के समान है विमानीकृत राजहंस,
विविध विबुधयुत मेरु सो अचल है।
दीपति दिपति अति सातौं दीप दीपियतु,
दूसरो दिलीप सो सुदच्छिणा को बल है॥
सागर उजागर की बहुबाहिनी को पति,
छनदान-प्रिय किधौं सूरज अमल है।
सब विधि समरथ राजै राज दशरथ,
भगीरथ पथगामी गंगा कैसो जल है॥ (२ : १०)

परिसंख्या

धवाहीन होने के कारण जहाँ केवल वाटिका ही विधवा है स्त्री नहीं, और जहाँ अधोगति मूल की ही है मलिनता होमाग्नियों के धूम की ही है; दुर्गति दुर्गों में और कुटिल गति सरिताओं में ही है और जहाँ श्रीफल की अभिलाषा कवियों के मन में ही है—

मूलन ही की जहाँ अधोगति केशव गाइय,
होमहुताशन धूम नगर एकै मलिनाइय।
दुर्गति दुर्गन हीजु कुटिल गति सरितन ही में,
श्रीफल को अभिलाष प्रकट कविकुल के जी में। (१:४७)

इसी प्रकार का वर्णन केशव रामराज्य की प्रशंसा में करने का लोभ संवरण न कर सके। रामराज्य का यह वर्णन केशव की अद्भुत आलंकारिक प्रतिभा का परिचायक है। परन्तु अलंकार-प्रदर्शन के उत्साह में केशव यहाँ भी दशरथ-राज्य के गुण-वर्णन की पुनरुक्ति कर गये हैं :—

होम धूम मलिनाई जहाँ। अतिचंचल चलदल है जहाँ।
बालनाश है चूड़ाकर्म। तीक्ष्णता आयुध के धर्म।
(२८ : ८)

२. कविकुल ही के श्रीफलन उर अभिलाष समाज। (२८ : १२)
३. मूलें तो अधोगति न पावत हैं केसोदास।
४. वन्ध्या वासनानि जानु विधवा सुवाटिका ही। आदि २।

परन्तु कई मौलिकताएँ भी इस वर्णन में हैं—

१. भ्रमै संभ्रमीयत्र शौकै सशोकी।
अधर्मे अधर्मी अलोकै अलोकी।
दुखै है दुखी ताप तापाधिकारी।
दरिद्रै दरिद्री बिकारै विकारी। (२८ : ७)

२. भावै जहाँ व्यभिचारी वेदै रमै परनारी,
द्विजगण दण्डधारी चोरी परपीर की।
मानिनीन ही के मन मानियत मानभंग,
सिन्धुहि उलंघि जात कीरति शरीर की॥ (२८ : ११)

३. लूटिबे के नाते पाप पट्टनै तो लूटियत,
तोरिबे के मोहतरु तोरि डारियतु है।
घालिबे के नाते गर्व घालियतु देवन के,
जारिबे के नाते अघओघ जारियतु है॥
बाँधिबे के नाते ताल बाँधियत केसोदास,
मारिबे के नाते तो दरिद्र मारियतु है।
राजा रामचन्द्रजू के नाम जग जीतियत,
हारिबे के नाते आन जन्म हारियतु है॥ (२८ : १३)

केशवदास ने अपने इस वर्णन में कवि-कल्पना का और अलंकार-कौशल का पूर्ण प्रयोग किया है। चौगान, प्रकाश,

शयनागार, राजमहल, संगीत, नृत्य, शय्या, प्रभात, भोजन, वसन्त, चन्द्र, शृङ्गार, नखशिख, उपवन, पर्वत, सरिता, जलाशय, स्नान, जल-क्रीड़ा आदि के वर्णन से ५ (२८,२९,३०,३१, ३२वें) प्रकाश भरे पड़े हैं। उनको केशव के अलंकार-कौशल के श्रेष्ठ उदाहरणों में गिना जायेगा।

कहीं कहीं तो अनेक अलंकारों की संसृष्टि और संकर कवि प्रस्तुत कर सका है—

१. खिले उरसीत लसे जल जात। जरैं विरही जनजीवत गात।
किधौं मन मीनन को रघुनाथ। पसारि दियो मनु मन्मथ नाथ।
(विभावना, उत्पेक्षा और सन्देह का संकर)

२. मृदु मुसकानि लला मन हरैं। बोलत बोल फूलसे झरैं।
तिनकी वाणी सुनि मन हारि। वाणी वीणा धरयो उतारि।
(रूपक, उत्प्रेक्षा, ललितोपमा का संकर)

३. विविध के सेमान है विमानी कृत राजहंस,
विधि विबुधयुत मेरु सो अचल है।
दीपति दिपति अति सातों दीप दीपियतु,
दूसरो दिलीप सो सुदक्षिणा को बल है॥
सागर उजागर की बहुवाहिनी को पति,
छनदानप्रिय किधौं सूरज अमल है।
सबविधि समरथ राजैं राजा दशरथ,
भगीरथ-पथगामी गंगा कैसो जल है॥ (२:१०)

(अनुप्रास, यमक, श्लेष, उपमा, रूपक, सन्देह और उल्लेख का संकर और संसृष्टि)

४. भौंहें सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर,
भूखन जराय ज्योति तड़ित रलाई है।

दूरि करी सुख मुख सुखमा शशी की,
नैन अमल कमल दल दलित निकाई है ॥
केसौदास प्रबल करेनुका गमन हर,
मुकुत सुहंसक सबद सुखदाई है ।
अम्बर बलित मति मोहै नील कंठजू की,
कालिका कि बरखा हरषि हिय आई है ॥ (१३:१६)

(अनुप्रास, यमक, श्लेष, रूपक, प्रतीप, सन्देह और निदर्शना का संसृष्टि और संकर)

उत्प्रेक्षा और सन्देह, उपमा और रूपक, यमक, श्लेष और मुद्रा, परिसंख्या और प्रतीप केशवदास के प्रिय अलंकार हैं परन्तु विरोधाभास, विभावना, सहोक्ति और स्वभावोक्ति, उदात्त, अल्प और अतिशयोक्ति के भी सुन्दर प्रयोग 'रामचन्द्रिका' में मिलते हैं । जैसे :

विरोधाभास—

विषमय यह गोदावरी अमृतन के फल देति ।
केशव जीवनहार को दुख अशेष हरि लेत ॥(११:२६)

विभावना—

जद्यपि इंधन जरि गए अरिगण केशवदास ।
तदपि प्रतापानलन के पल पल बढ़त प्रकाश ॥

सहोक्ति—

भुवभार हि संयुत राकस को गण जाय रसातल में अनुराग्यो ।
जग में जय शब्द समेत ही केशव राजविभीषन के सिर जाग्यो ॥
मयदानव नन्दिनी के सुखसों मिलि के सिय के हिय को दुख भाग्यो ।
सुरदुन्दुभि सीस गजा सर रामको रावण के सिर साथहि लाग्यो ॥
(१६:७३)

स्वभावोक्ति—

करि आदित्य अदृष्ट नष्ट जैम करौं अष्ट वसु।
रुद्रन बोरि समुद्र करौं गन्धर्व सर्व पशु॥
बलित अबेर कुबेर बलहिं गहिदेव इन्द्र अब।
विद्याधरन अविद्य करौं निज सिद्ध-सिद्ध सब॥ (१७:४६)

उदात्त—

सबके कलपद्रुम के बन हैं सबके बरवारन गाजत है।
सबके घर शोभित देवसभा सबके जय दुंदुभि बाजत है॥
निधि सिद्ध निशेष अशेषनसों सबलोगसबै सुखसाजत है।
कहि केशव श्री रघुराज के राजसबै सुरराज से राजत हैं॥
(२८:१४)

अल्प—

तुम पूँछत कहि मुद्रिके, मौन होत यहि नाम।
कंकन की पदवी दई, तुम बिन या कहँ राम॥ (१३:८७)

अतिशयोक्ति—

राघव की चतुरंग चमूचय को गनै केशव राज समाजनि।
सूर तुरंगन के उरझैं पद तुंग पताकनि की पट साजनि॥
टूटि परैं तिनते मुकता धरणी उपमा बसी कवि राजनि।
बिन्दु किधौं मुखफेतन के किधौं राजसिरी स्रवैं मंगल लाजनि॥
(३५:८)

शब्दालंकारों में भी केशव परम प्रवीण हैं। उनके प्रिय शब्दालंकार अनुप्रास, यमक और श्लेष हैं।

अनुप्रास

१. सब जातिफटी दुख की दुपटी, कपटी न रहै जहँ एक घटी।
निघटी रुचि मीच घटी हू घटी, जगजीव-तीन की छूटी तटी॥
(११:१८)

पन्नग पतंग तरु गिरि गिरिराज गज,
गजराज मृगराज राजिनि दलति है। (१४:३७)

यमक

तरु तालीस तमाल ताल हिंताल मनोहर।
मंजुल वंजुल लकुच बकुल कुल केर नारियर। (३ : १)
मानहु शेष अशेष धर धरनहार धरियंड।

श्लेष

अभंगपद—

पांडव की प्रतिमा सम लेखो। अर्जुनभीम महामति देखो॥
है सुभगा सम दीपति पूरी। सिन्दुर औ तिलकावलि रूरी॥
(११ : २१)

देखी बनवारी चंचलभारी तदपि तपोधन मानी।
अति तपमय लेखी गृहथित पेखी जात दिगम्बर जानी।
जग यदपि दिगम्बर पुष्पवती नर निरखि निरखि मन मोहैं।
पुनि पुष्पवती तन अति अतिपावन गर्भ सहित सब सोहैं।
(१ : ३४)

भंगपद—

१. भौंहैं सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर,
भूषन जराय जोति तड़ित रलाई है।
दूरि करी सुख मुख सुखमा ससी की नैन,
अमल कमल दल दलित निकाई है॥
केसोदास प्रबल करेनुका गमन हर,
मुकुत सुहंसक सबद सुखदाई है।

अंबर बलित मति मोहै नीलकण्ठजू की,
कालिका कि बरसा हरसि हिय आई है॥
(१३:१६)

२. कुन्तल ललित नील भ्रकुटी धनुष नैन,
कुमुद कटाक्ष बाण सबल सदाई है।
सुग्रीव सहित तार अंगदादि भूषनन,
मध्य देश केशरी सुगज गति भाई है॥
विग्रहानुकुल सब लक्ष लक्ष ऋक्षबल,
ऋक्षराज मुखी मुख केशोदास गाई है।
रामचंद्रजूकी चमू राजश्री विभीषण की,
रावणकी मीचु दरकूच चलि आई है॥
(१५:१६)

पात्रों का स्वरूप चित्रण

पात्रों के स्वरूप-चित्रण में केशवदास की लेखनी कुशल है। केशवदास की अलंकारप्रियता ही उनके रूपचित्रणों की शक्ति है और वही उनकी दुर्बलता है, वही उनकी सुरूपता और वही उनकी कुरूपता है। सीता के रूप-वर्णन में तुलसीदास अप्रस्तुतप्रशंसा और निदर्शना द्वारा उनको बड़े कलात्मक और मर्यादित वर्णन द्वारा विश्व की अनुपमेय सुन्दरी सिद्ध करते हैं:

जो छवि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छप सोई॥
सोभा रजु मन्दरु सिंगारू। मथइ पानि पंकज निज मारू॥
यहि विधि उपजै लच्छि, जब सुन्दरता सुखमूल।
तदपि सकोच समेत कवि, कहहिं सीयसम तूल॥
(रा. च. मा. : बालकाण्ड)

इस अर्थगर्भित वर्णन द्वारा तुलसीदास ने अन्य सब उपमाओं

को नगण्य कर दिया है। यदि वे इसके अतिरिक्त व्यतिरेक द्वारा सीता की चन्द्रमा से श्रेष्ठरूपता न भी प्रमाणित करते तब भी कोई हानि न थी—

उपमा सकल मोहि लघुलागी। प्राकृत नारि अंग अनुरागी।
सीय बरनि तेहि उपमा देई। कुकवि कहाइ अजस को लेई।
जो पटतरिय तीय सम सीया। जग अस जुवति कहाँ कमनीया?
गिरा मुखर तनुअरध भवानी। रति अतिदुखित अतनु पति जानी।
विष वारुणी बन्धु प्रिय जेही। कहिय रमा सम किमि बैदेही।
(बालकांड)

तुलसीदास अलंकार का नियोजन करते हैं परन्तु अपने सहज सरल स्वाभाविक रूप में और केशवदास अलंकारों का प्रयोग करते हैं परन्तु जटिल और क्लिष्ट रूप में। उनका सीता का रूप-वर्णन इस प्रकार 'प्रतीप' का सुन्दर उदाहरण है :

को है दमयंती इन्दुमती रति राति दिन,
होइ न छबीली छनछबि जो सिंगारिये।
केशव लजात जलजात जातवेद ओप,
जातरूप बापुरो बिरूप सो निहारिये॥
मदन निरूपम निरूपन निरूप भयो,
चंद बहुरूप अनुरूपकै विचारिये।
सीताजी के रूप पर देवता कुरूप को हैं,
रूप ही के रूपक तो वारि वारि डारिये॥ (६:५६)

इसी प्रकार राम का रूप-वर्णन 'भ्रान्तिमान' का सुन्दर उदाहरण है—

अमल सजल घनश्याम वपु केशोदास,
चन्द्रहू ते चारु मुख सुषमा को ग्राम है।

कोमल कमल दल दीरघ विलोचननि,
सोदर समान रूप न्यारो-न्यारो नाम है॥
बालक विलोकियत पूरन पुरुष गुन,
मेरो मन मोहियतु ऐसो रूपधाम है।
वैर जिय जानि बामदेवको धनुष तोरयो,
जानत हौं बीस बिसे राम वेष काम है॥ (७:१४)

सात्विक धर्म और वीर के समन्वित प्रतीक भृगुराज परशुराम का रूप-चित्रण भी प्रभावोत्पादक है। 'स्वभावोक्ति' और 'भ्रम' का वह सुन्दर संकर है :

कुशमुद्रिका समिधैं श्रुवा कुश औ कमंडल को लिये।
कटिमूल श्रोननि तर्कसी भृगुलात सी दरसै हिये॥
धनुबान तिक्त कुठार केशव मेखला मृगचर्म सों।
रघुबीर को यह देखिये रस बीर सात्विक धर्म सों॥
(७:१५)

हनुमान के सुन्दर नामक पर्वत से उछलकर सुबेल नामक पर्वत की ओर उड़कर लंका को प्रस्थान करने का दृश्य सचमुच आँखों में विद्युत की सी एक ज्वलंत रेखा खींच देता है :

हरि कैसो वाहन कि विधि कैसो हेम हंस,
लीक सी लिखत नभ पाहन के अंक को।
तेज को निधान राम मुद्रिका विमान कैधों,
लच्छनको बाण छूट्यौ रावण निशंक को॥
गिरिगज गंड ते उड़ान्यो सुवरन अलि,
सीता पद पंकज सदा कलंक रंक को।
हवाई सी छूटी केशोदास आसमान में,
कमान कैसो गोला हनुमान चल्यो लंक को॥ (१३:३८)

वासर की संपति उलूक ज्यों न चितवत,
चकवा ज्यों चन्द चितैं चौगुनो चपत हैं ॥
केका सुनि व्याल ज्यों बिलात जात घनश्याम,
घननि की घोरनि जवासो ज्यों तपत हैं।
भौंर ज्यों भँवत, वन जोगी ज्यों जगत रैनि,
साकतज्यों रामनाम तेरो ही जपत हैं ॥(१३:८८)

केशव वस्तुतः 'अलंकार के लिए अलंकार' की रुचि के कवि थे।

प्रकृति-वर्णन

प्रकृति-वर्णन की दो प्रमुख पद्धतियाँ हैं :
(१) रूप चित्रण द्वारा अर्थात् आलम्बन रूप में ;
(२) परिस्थिति-चित्रण द्वारा अर्थात् उद्दीपन रूप में।

केशव ने पहिली पद्धति का ही आश्रय लिया है। वाल्मीकीय रामायण, रघुवंश तथा अन्य संस्कृत काव्यों के कवियों की यही परिपाटी रही है। प्रकृति को मानवीय जीवन के साथ संश्लिष्ट रूप में भी उत्तरकालीन कवियों ने देखा है। कवि अपनी कथा के पात्रों के जीवन का चित्र देते हुए प्रकृति को नहीं भूल पाता क्योंकि प्रकृति व्यक्ति के विविध भाव-भावनाओं का आलम्बन मात्र ही नहीं, है उद्दीपन भी है और कभी कभी तो प्रकृति व्यक्ति के मानस की प्रतिच्छाया बन जाती है। परन्तु केशवदास की प्रकृति केवल उत्प्रेक्षाओं अथवा सन्देहों की पिटारी बनकर रह गई। उसकी सजीवता, सप्राणता को कवि नहीं देख सका सम्भवतः केशव का प्रकृति-निरीक्षण गतानुगत था इसलिए उन्होंने कवि-परम्पराके अनुसार ही प्रकृतिका रूप-चित्र किया। यदि उनकी आँख प्रकृति के सजीव रूप व्यापारों की ओर गई

होती और यदि गई तो रमी होती तो वे प्रकृति के अधिक मनोरम और प्रभविष्णु रूप चित्रित कर सकते। अयोध्या की वन-वाटिकाओं का वर्णन करते हुए वे कोई नई बात नहीं कहते जो हृदय को बरबस खींचले। यदि उन्होंने मौलिकता दिखाई है तो विरोधाभास, परिसंख्या, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकारों के बल पर प्रकृति के रूप-व्यापारों में विचित्रताओं की खोज करना ही उनके हाथ लगा है। दशरथ की वाटिका वनवासी (वनवासिनी कन्या) होकर भी चंचल है, तपस्विनी (तप सहनेवाली) होकर भी गृहस्थित (परिखा से घिरी हुई) है दिगम्बरा कन्या होकर भी पुष्पवती (रजोधर्मा) है और पुष्पवती होकर भी गर्भ (फल) वती है :

देखी वनवारी चंचल भारी तदपि तपोधन मानी।
अति तपमय लेखी गृहथित पेखी जगत दिगम्बर जानी।
जग यद्पि दिगम्बर पुष्पवती नर निरखि निरखि मन मोहै।
पुनि पुष्पवती तन अति अतिपावन गर्भ सहित सब सोहैं।
(१ : ३४)

चामत्कारिक दृष्टि से ऐसा उत्कृष्ट वर्णन अन्यत्र दुर्लभ होगा परन्तु इससे वाटिका का सरल सहज सौन्दर्य प्रत्यक्ष नहीं होता।

विश्वामित्र दूसरे विधाता हैं और असम्भव को भी सम्भव कर सकते हैं। क्या इसीलिए उनके 'विचित्र वन' में सब काल और सब देशों के लता द्रुम और पक्षी विद्यमान हैं ?—

तरु तालीस तमाल ताल हिन्ताल मनोहर।
मंजुल वंजुल लकुच वकुलकुल केल नारियर।
एला ललित लवंग संग पुंगीफल सोहै।
सारी शुककुल कलित चित्त कोकिल अलि मोहै।

शुभ राजहंस कलहंस कुल, राजत मत्त मयूर गन।
अति प्रफुलित फलित सदा रहै, केसवदास विचित्रवन॥ (३:१)

चित्रण में यथार्थता का आभास देने के लिए कवि को लता-द्रुमों की सूची बनाते समय उस प्रदेश की वनस्पतियों का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। केशवदास की सृजनशक्ति और विश्वामित्र की सृजनशक्ति में यहाँ संघर्ष है। विश्वामित्र की अतिमानवीय शक्तियों और वन की विचित्रता के आवरण में केशवदास की अलंकार-रचना और रूढ़िप्रियता को नहीं छिपाया जा सकता।

पंचवटी और दंडक के वर्णन भी केशव को प्रकृति-चित्रण के सुन्दर अवसर प्रदान कर सकते थे परन्तु यहाँ भी केशव को अलंकारों के मोह ने ही जकड़ लिया है। पंचवटी के निम्न-लिखित वर्णन में उसका महात्म्य ही कवि ने साकार कर दिया है। उसके सौन्दर्य में कवि को कोई विशेष उल्लेखनीय वस्तु न मिली :

सब जाति फटी दुख की दुपटी कपटी न रहै जहँ एक घटी।
निघटी रुचि मीचु घटी हू घटी जग जीव जतीन की छूटी तटी।
अघ, ओघ की बेरी कटी बिकटी निकटी प्रकटी गुरु ज्ञान गटी।
चहुँ ओरन नाचत मुक्ति नटी गुन धूरजटी वन पंचवटी।
(११: १८)

४ दंडक वन का वर्णन करते समय भी केशव की दृष्टि वन की सुरूपता अथवा कुरूपता किसी पर नहीं है। यदि दृष्टि है तो केवल आलंकारिक कौशल द्वारा अपने पांडित्य-प्रदर्शन पर। श्रीफल (बेल और सम्पत्ति) की बहुलता के कारण दंडक वन किसी महाराजा की सेवा के समान है,तो अर्क (सूर्य और आक) समूहमय होने के कारण वह प्रलय-वेला के समान है अर्जुन

(अर्जुन पांडव और ककुभ वृक्ष) तथा भीम (भीम पांडव तथा अम्लवेत वृक्षों) के कारण वह पांडवों की प्रतिमा है और शितिकंठ (मयूर और महादेव) की प्रभामयी होने के कारण वह पार्वती की क्रीड़ास्थली है :

शोभत दंडक की रुचि बनी । भाँतिन भाँतिन सुन्दर घनी ।
सेव बड़े नृप की जनु लसै । श्रीफल भूरि भयो जहँ बसै ।
बेर भयानक सी अतिलगे । अर्क समूह जहाँ जगमगैं ।
पांडव की प्रतिमा सब लेखो । अर्जुन भीम महामति लेखो ।
है सुभगा सब दीपति पूरी । सिन्दुर औ तिलकावलि रूरी ।
राजति है यह ज्यों कुलकन्या । धाइ बिराजति है संग धन्या ।
केलिथली जनु श्रीगिरिजा की । शोभधरे सितकंठ प्रभाकी ।

(११ : १६-२१)

यह है केशव का प्रकृति-वर्णन ! महाराजा की सेवा, प्रलय-बेला, पांडवों की प्रतिमा अथवा पार्वती की क्रीड़ा-स्थली से समता प्रदर्शित करने में कवि न किसी सौन्दर्य की व्यंजना कर रहा है न भयंकरता की । केशव के एक प्रशंसक श्रीजगन्नाथ तिवारी की यह स्थापना भ्रमपूर्ण है कि केशव दंडक वन के रमणीय और भयंकर दोनों पक्ष दिखाना चाहते हैं क्योंकि पांडवों की प्रतिमा, महाराजा की सेवा, कुलकन्या अथवा किसी सौभाग्यवती स्त्री की भाँति दंडकवन को बताकर केशव उसके रमणीय और भयंकर पक्षों की व्यंजना नहीं कर रहे हैं वरन् अपने अलंकार-कौशल की व्यंजना कर रहे हैं । भवभूति ने तो दंडकवन के अपने वर्णन (स्निग्धश्यामाः कचिदपरतो भीषणा भोगरूक्षाः) द्वारा निःसन्देह उनके स्निग्ध-श्यामल और भीषण रूक्ष दोनों पक्षों की ओर इंगित किया है । यही गति केशव के

'वर्षा-कालिका रूपक' की भी हैं। उसपर न तो आलोचक की यह आपत्ति उचित है कि केशव के सामने वर्षा कालिका-का भयंकर रूप लाती है और न यह स्पष्टीकरण ही है कि विरही राम के लिए यहाँ वर्षा विरहोद्दीपक और भयंकर रूप में चित्रित हुई है :

वर्षा-वर्णन

भौंहे सुर चाप चारु प्रमुदित पयोधर,
मूखनजराय ज्योति तड़ित रलाई है।
दूरि करी सुख मुख सुपमा ससी की नैन,
अमल कमलदल दलित निकाई है ॥
केसोदास प्रबल करेनुका गमन हार,
मुकत सुहंसक सबद सुखदाई है।
अम्बर वलित मति मोहै नीलकंठ जूकी,
कालिकाकि वरषा हरषि हिय आई है ॥
(१३ : १६)

अभिसारिनि सी समझो पर नारी।
सतमारग मेटन की अधिकारी ॥ (१३ : २०)

वर्षा और शरद वर्णन में केशव ने 'रामचरितमानस' का भी अनुकरण किया है। तुलसीदास नेभी दामिनी को खलकी प्रीति की भाँति अस्थिर और दादुर ध्वनि को ब्राह्मणों के वेदपाठ के समान बताते हुए वर्षाकालीन दृश्यों पर अनेक उत्प्रेक्षाएँ की हैं। जहाँ संन्यासी परमार्थी तुलसीदास ने लोक-कल्याण के लिए कुछ नीति और उपदेश की बातें भी कह डाली हैं, जैसे :

१. दामिनि दमकि रही घन माहीं।
खल की प्रीति यथाथिर नाहीं ॥

२. बुंद अघात सहैं गिर कैसे ।
खल के वचन संत सह जैसे ॥
३. भूमि परत भा डाबर पानी ।
जिमि जीवहिं माया लपटानी ॥
४. दादुर धुनि चहुँ ओर सुहाई ।
वेद पढ़ैं जनु बटु समुदाई ॥
५. महावृष्टि चलि फूट कियारी ।
जिमि स्वतन्त्र भय बिगरहिं नारी ॥
(किष्किन्धा कांड : रा. च. मा.)

वहाँ केशवदास ने भी परिस्थिति के अनुरूप कुछ उसी शैली के वर्णन किये हैं :

१. ठौर ठौर चपला चमकैं यों ।
इन्द्रलोक-तिय नाचति हैं ज्यों ।
२. घनघोर घने दसहूँ दिस छाये ।
मघवा जनु सूरज पै चढ़ि आये ।
३. धनु है यह गौरमदाइन नाहीं ।
सरजाल बहे जलधार वृथाहीं ।
४. भट चातक दादुर मोर न बोलैं ।
चपला चमकै न फिरै खँग खोलैं ।

कवि ने वर्षा को युद्ध का रूप देकर सम्भवतः राम के म[illegible] जगत में होनेवाले भावी युद्ध के विचारों को व्यंजित किया है । तुलसीदास तुलसीदास थे और केशवदास केशवदास । दोनों के इन वर्णनों का रचयिताओं की पृथक् दृष्टि से अभिनन्दन ही किया जायगा । शरद ऋतु भी इसी प्रकार वृद्धा दासी की भाँति [illegible] राम की प्रतीत होती है :

लक्ष्मण दासी वृद्ध सी आई शरद सुजाति।
मनहुँ जगावन को हमहिं बीते वर्षा राति ॥ (१३:२७)

इस स्थान पर कवि ने प्रकृति का वह रूप देखा है जब वह व्यक्ति के मानस की प्रतिच्छाया बन जाती है।

परन्तु जब प्रकृति व्यक्ति के जीवन से संश्लिष्ट होती है और उसका व्यक्तित्व व्यक्ति के जीवनसे सम्बद्ध हो जाता है तब कवि उस को परिस्थितियों के अंग के रूप में चित्रित करता है— उससे परिस्थितियों में रंग भरता है। तुलसीदास जैसे कुशलकवि प्रकृति का इस प्रकार का चित्रण किया करते हैं। जनकपुरी में पुष्प-वाटिका और लंकापुरी में अशोक-वाटिका के वर्णन राम और सीता के जीवन से अभिन्न नहीं किये जा सकते। विरही राम के विरह में प्रकृति कैसी दिखाई देती है यह इस प्रकार के चित्रण का एक उदाहरण है—

हे खगमृग हे मधुकर श्रेनी। तुम देखी सीता मृगनैनी।
खंजन सुक कपोत मृगमीना। मधुप निकर कोकिला प्रबीना।
कुन्द कली दाड़िम दामिनी। कमल सरद शशि अहिभामिनी।
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं। नेक न संक सकुचि मन माहीं।
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाय जनु राजू।

परन्तु केशवदास प्रकृति के साथ पात्रों का यह रागात्मक सम्बन्ध स्थापित न कर सके। जब राम, लक्ष्मण और विश्वामित्र जनकपुर पहुँचे हैं तब सूर्य उनके स्वागत के लिए मंगल-सूचक शकुन बनकर सामने उदय होता है:

काहू को न भयो कहूँ, ऐसो शकुन न होत।
पुर पैठत श्रीराम के, भयो मित्र उद्दोत ॥

परन्तु इसीपर उपमा, उत्प्रेक्षा और सन्देह के त्रिविध पाश में

जकड़ाहुआ केशव का कवि-कौशल ऐसे मंगल-सूचक सूर्य को मंगलघट, इन्द्र का छत्र और प्राची-बाला के मस्तक के लाल मणि के साथ साथ कालरूपी कापालिक के हाथ में किसी का रक्तरंजित सिर भी बना देता है :

अरुण गात अति प्रात पद्मिनी प्राणनाथ भय,
मानहुँ केशोदास कोकनद कोक प्रेममय।
परिपूरण सिन्दूर पूर कैधौं मंगल घट,
किधौं शक्र को छत्र मढ्यो माणिक मयूख पट॥

कै श्रोणित कलित कपाल यह,
किल कापालिक काल को।
यह ललित लाल कैधौं लसत
दिग् भामिनि के भाल को॥ (५:१०)

यह तो केशवदास ही बता सकते हैं कि ऐसे मंगल अवसर पर मंगलघट और इन्द्र-छत्र के साथ रक्तरंजित सिर का क्या स्थान है? क्या यह भी किसी मंगल का सूचक है? कवि जिस शुभ शकुन की भूमिका सूर्योदय में बना चुका था उसके निर्वाह के लिए उदीयमान सूर्य का यह चित्रण रक्त के समान ही रोमांचकारी और भयंकर है!

इसके विपरीत अग्नि की लपटों में भस्म होते हुए लंका के प्रसादों में कवि केशव को मनोरम उपमाएँ सूझती हैं :

जटी अग्नि ज्वाला अटा सेत हैं यों।
शरत्काल के मेघ संध्या समै ज्यों।
लगी ज्वाल धूमावली नील राजैं।
मनो स्वर्ण की किंकनी नाग साजैं॥ (१४ : ६)

पम्पासर का वर्णन इस प्रकार के दोष से मुक्त है। उसका रूप-चित्रण राम के विरहोद्दीपन में साधक है :

नव नीरज नीर तहाँ सरसैं। सिय के सुभ लोचन से दरसैं।

में 'स्मरण' अलङ्कार ने सौंदर्य द्विगुणित कर दिया है। लक्ष्मण की पंपासर (कमलाकर) के प्रति यह उपालम उक्ति चामत्कारिक भी है और मार्मिक भी है।

मिलि चक्रिन चंदन बात बहै अति मोहत न्यायन ही मति को।
मृग मित्र विलोकत चित्त जरै लिये चन्द्र निशाचर पद्धति को।
प्रतिकूल शुकादिक होहिं सबै जिय जानै नहीं इनकी गति को।
दुख देत तड़ाग तुम्हें न बनै कमलाकर ह्वै कमलापति को।
(१२ : १५)

त्रिवेणी-वर्णन में उसका महात्म्य ही कवि को अधिक प्रभावित कर रहा है :

चिलके दुति सूछम सोभति वारु।
तनु ह्वै जनु सेवत हैं सुर चारु। २०: २६)
जल की दुति पीत सितासित सोहै।
अति पातक घात करै जग को है।
मद एण मलै घसि कुंकुम नीको।
नृप भारत खण्ड दियो जनु टीको। (२०: ३०)

प्राकृतिक सौन्दर्य के नाते तो वे 'शोभन शरीर पर कुंकुम विलेपन कै स्यामल दुकूल भीन भलकत भाई है' कहकर ही रह गये हैं। उसे 'भूतल की वेणी,' 'सुरपुर मारग', पूरण अनादि' का 'द्रवरूप गात' कहने में कवि को अधिक संन्तोष है क्योंकि

'दरस परस ही ते थिर चिर जीवन की
कोटि कोटि जन्म की सुगन्ध मिटि जाति है।'

केशव कृत प्रभात, वसन्त आदि के वर्णन भी चमत्कार-प्रधान ही हैं अन्यथा कोकिल, हंस, शुक आदि का स्वर युद्धों की हुंकार कैसे हो जाता ?

फूली लवंग लवली लतिका विलोल।
भूले जहाँ भ्रमर विभ्रम मत्त डोल।
बोलैं सुहंस शुक कोकिल केकिराज।
मानों वसंत भट बोलत युद्ध काज।

और पलाश-पुष्प की लालिमा शेष-मुखों की ज्वाला कैसे हो जाती ?—

पालास मांल विन पत्र विराज मान।
मानो वसन्त दिय कामहिं अग्निवान।

फूले पलास विलास थली बहु केशवदास प्रकाश न थोरे।
शेष अशेष मुखानल की जनु ज्वाल विशाल चली दिवि ओरे।
(३० : ३४-३५)

चन्द्र का वर्णन तो केशव को एक चमत्कारवादी पंडित कवि ही घोषित करता है—

केशोदास है उदास कमलाकर सों कर,
शोषक प्रदोप ताप तमोगुण तारिये।
अमृत अशेष के विशेष भाव वरसत,
कोकनद मोद चंड खंडन विचारिये।
परम पुरुष पद विमुख परुष रुख,
सुमुख सुखद विदुषन उर धारिये।
हरि हैं री हिये में न हरिण हरिण नैनी,
चन्द्रमा न चन्द्रमुखी नारद निहारिये।
(३० : ४६)

केशव के प्रशंसकों का यह कहना भी उचित नहीं है कि विरही राम के लिए वर्षा भयंकर ही हो सकती है क्योंकि केशव इसीके आगे वर्षा को अभिसारिका, परकीया स्त्री, पाप-बुद्धि इत्यादि के रूपमें देखते हैं।

अभिसारिनि सी समझौ परनारी।
सत मारग मेटन की अधिकारी॥
मति लोभ महामद मोह छई है।
द्विजराज सुमित्र प्रदोष मई है॥ (१-:२०)

तब क्या यह कहा जायगा कि रामचन्द्र के ध्यान में कोई अभिसारिका और परकीया स्त्री रही हो? वस्तुतः केशव ने तो प्रकृति के रूप-संमोहन से निःसंग और निर्लिप्त होकर ही दंडकवन अथवा वर्षा का वर्णन किया है। केशव के ये आलंकारिक वर्णन उन्हें एक प्रतिभाशाली रीति-कवि तो सिद्ध कर सकते हैं, प्रकृति का भावप्रवण और भावुक चित्रकार नहीं।

केशव की मौलिकता

केशवदास ने 'रामचन्द्रिका' में उस कथा को लिया है जो शताब्दियों से वाल्मीकि रामायण द्वारा लोक-प्रतिष्ठित थी और गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरित मानस' द्वारा जनता का कण्ठहार बन चुकी थी। राम और सीता लोक के घट-घटमें बस चुके थे और उनकी कथा घर-घर की कहानी बन गई थी। फलतः केशव राम-जीवन के कई प्रसंगों के वर्णन की चिन्ता से मुक्त हो गये। केशव को राम-जीवन (कथा) के जो अंग मनोहारी प्रतीत हुए उन्हीं पर उन्होंने अपनी चन्द्रिका का प्रकाश डाला। जिन घटनाओं को उन्होंने चित्रित नहीं किया उनके विषय में वे अधिक चिन्तित नहीं थे क्योंकि जनता के पठित-अपठित और पंडित जन रामकथा से पूर्ण परिचित थे।

राम-जीवन के शैशव और बाल्यकाल को केशव ने एक-दम उपेक्षित कर दिया। विवाह के पश्चात् राम के घर लौट आने पर राज्यारोहण प्रसंग, कैकेयी-मन्थरा वार्ता, कैकेयी-कोपलीला तथा वनवास के पूर्व माताओं से विदा लेने का मार्मिक दृश्य भी केशव की कल्पना, भावना और अनुभूति को सजग न कर सका। इन अभावों के होते हुए भी केशव ने रामकथा को अन्त तक निभाया है। यथास्थान घटनाओं को नियोजित किया है। ज्ञानी भक्त तुलसी के 'रामचरित मानस' का बालकांड ज्ञान का अक्षय अगाध भांडार है इसलिए वह अत्यन्त विशद है तो केशव की 'रामचन्द्रिका' राजकवि की लिखी हुई है इसलिए उसमें राम के राजा होने के अनन्तर रामराज्य और राजनीति का वर्णन अत्यन्त विशद और विस्तृत है।

केशवदास ने घटनाओं में किंचित परिवर्तन भी किये हैं। 'रामचन्द्रिका' के प्रणयन के पहले राम-जीवन पर संस्कृत में वाल्मीकि के रामायण-काव्य के अतिरिक्त किसी अज्ञात कवि कृत 'हनुमन्नाटक' और जयदेव कृत 'प्रसन्नराघव' नाटक थे और हिन्दी में तुलसी का 'रामचरितमानस' काव्य* था। केशव ने इन काव्यों से अनेक स्थलों पर प्रेरणा ली है और कई स्थलों पर अपनी कल्पना मौलिकता का समावेश किया है।

बालकांड के अधिकांश चित्र वाल्मीकीय और तुलसीकृत रामायण से भिन्न नहीं है, हाँ अयोध्या नगरी तथा सरयू आदि के वर्णन केशव की ही कृति हैं।

(२) राजसभा, विश्वामित्र का स्वागत, राम-लक्ष्मण को माँगना-दशरथ की आपत्ति, विश्वामित्र की रुष्टता तथा-वशिष्ट

* 'अपभ्रंश' में 'स्वयम् रामायण' भी विद्यमान था।

का समझा-बुझाकर राम-लक्ष्मण को भेजने के लिए दशरथ की स्वीकृति लेना, वाल्मीकि और तुलसी दोनों की कृतियों में एक ही है।

(३) अयोध्या से जनकपुरी तक राम-लक्ष्मण-विश्वामित्र की यात्रा वाल्मीकि से तुलसी और केशव ने थोड़े थोड़े परिवर्तन के साथ दिखाई है—रामायण में सब का काम-वन, (शिवाश्रम) में विश्राम, सरयू-वर्णन, ताड़का-वध, अस्त्र-दान, के उपरान्त विश्वामित्र के यज्ञस्थल में प्रदेश है ! 'रामचरित मानस' में एक दम ताड़का-वध के उपरान्त विद्या-मंत्र, अस्त्र-शस्त्र दान और यज्ञाश्रम प्रदेश है। 'रामचन्द्रिका' में अस्त्रदान के उपरान्त काम-वन-भ्रमण और विश्वामित्र के यज्ञस्थल में पदार्पण वर्णित है। विश्वामित्र के आश्रम का वर्णन यहाँ बाण की कादम्बरी के आधार पर किया है।

ताड़का-बध इसके उपरान्त है—जिसे वाल्मीकि ने मार्ग में ही कर दिया था। 'रामचरितमानस' तथा 'रामचन्द्रिका' में मारीच-सुबाहु-राक्षसों का वध रामायण की ही भाँति विश्वामित्र के आश्रम में है।

रामायण में यज्ञ-समाप्ति के अनन्तर मिथिला तक की यात्रा विशदरूप है। उसमें विश्वामित्र द्वारा गंगोत्पत्ति-वर्णन तथा अहिल्या-शापमोचन प्रसंग, त्रिशंकु; तथा अम्बरीष के उपाख्यान समाविष्ट हैं। 'रामचरितमानस' में भी यज्ञ पूर्ण होने पर मिथिला के लिए प्रस्थान हो जाता है परन्तु 'रामचन्द्रिका' में केशव ने मौलिकता की सृष्टि की है—सब लोग मिथिला से आए हुए एक ब्राह्मण से सीता-स्वयम्बर के धनुष यज्ञ की कथा सुनने लगते हैं। यहाँ स्वयम्बर का विशद वर्णन है—देश विदेश के राजा-महाराजा शूरवीर आ-आकर धनुष चढ़ाने की प्रतियोगिता में

सम्मिलित होते हैं, परन्तु 'काहू चढ़ायो न काहू नवायो न, काहू उठायो न आँगुर हू द्वै'।

केशव ने यहाँ स्वयम्वर का परोक्ष (श्रव्य) वर्णन करके प्रभविष्णुता को घटा दिया है। जनक-सभा में किसी ऋषि-पत्नी का (राम का) चित्र हाथ में लेकर उसे सीता का भावी वर घोषित करना केशव की मौलिक सृष्टि नहीं है। 'प्रसन्नराघव' के प्रथमांक में मैत्रेयी देवी सिद्धयोगिनी की कथा इसका मूल है। सुमति-विमति नामक वन्दीजनों का सम्वाद भी केशव ने 'प्रसन्नराघव' के मंजीरक-नूपुरक सम्वाद के अनुकरण में लिखा है। नूपुरक की 'वयस्य मञ्जीरक! कोऽयं सीताकरग्रहवासना वसन्तलक्ष्मीविलसत्पुलक-मुकुलजाल-मण्डितं निज भुज-सहकार शाखि युगलं विलोकयंस्तिष्ठति ?' उक्ति ही सुमति के :

को यह निरखत आपनी पुलकित बाहु विशाल।
सुरभि स्वयंवर जनु करी मुकुलित शाख रसाल।

प्रश्न में बड़े कौशल से सिमट गई है।

'प्रसन्नराघव'* की 'किमधुना निर्वीसुर्वीरतलम्' ही 'रामचरितमानस' में 'वीरविहीन मही मैं जानी' है, परंतु 'रामचन्द्रिका' में वह साधारण वन्दी की उक्ति हो जाने के कारण राजाओं को अपमानजनक हो गई है—

दिगपालन की भुवपालन की लोकपालन की किन मातु गई च्वै।
कत भाँड़ भये उठि आसन तें कहि केशव शंभु सरासन को छ्वै।
अरु काहू चढ़ायो न, काहू नवायो न, काहू उठायो नआँगुर हू द्वै।
कछु स्वारथ भो न भयो परमारथ, आये हैं वीर, चले वनिता ह्वै।
(३ : ३४)

---

* 'हनुमन्नाटक' में भी यह श्लोक मिलता है।

वाल्मीकि ने विश्वामित्र के यज्ञ में ही महर्षियों के द्वारा महाबली राजपुत्रों, देव, गन्धर्व असुर, राक्षसों का धनुष चढ़ाने में असफल होना सूचित करया दिया था—

नास्य देवा न गन्धर्वा नासुरा न च राक्षसा :।
कर्तुमारोपणं शक्ता न कंथचन मानुषा :
धनुषस्तस्य वीर्यं हि जिज्ञासन्तो महीक्षितः।
न शेकुरारोपयितुं राजपुत्रा महाबलाः।
(बालकांड : रामायण)

तुलसीदास ने सीता-स्वयम्वर में देश-विदेश के राजाओं को तथा राम को एक ही अवसर पर लाकर मौलिकता की सृष्टि की थी : केशव ने इस प्रतियोगिता को सूच्य दिखाकर तीसरा मार्ग ग्रहण किया।

धनुषभंग, विवाह और परशुराम-आगमन वाल्मीकि का यह क्रम है : केशव ने इसीका अनुकरण किया है। तुलसीदास ने धनुषयज्ञ में ही जयमाला-वरण के उपरान्त परशुराम का आगमन और गर्वभंग दिखाकर मौलिकता के साथ राम के शौर्य-पराक्रम की वृद्धि की थी।

केशव ने 'रावण बाण संवाद' जोड़ा है जो 'प्रसन्नराघव' का अनुसरण है : 'रावण-बाण सम्वाद' की सभी सूक्तियों का-केशव ने अपहरण किया है। केशव निस्सन्देह कुशल अनुवादक हैं—

(१) अये बहुमुखता नाम बहुप्रलापितायाः कारणम्।
(प्रसन्नराघव)

बहुत बदन जाके। विविध बचन ताके।–'रामचन्द्रिका'

(२) अलमलीकवाग्विग्रहेण । तदिदं धनुरावयोस्तारतम्यं निरूपाध्यति।—'प्रसन्नराघव'

हमहिं तुमहिं नहिं बूझिए, विक्रम-वाद अखण्ड।
अबहीं यह कहि देइगो, मदन–कदन–कोदण्ड।
(रा. चं.)

परशुराम का स्वरूप-वर्णन भी 'प्रसन्नराघव' से ही ग्रहीत है:

मौर्वीधनुस्तनुरियं च विभर्ति मौर्ञ्जी,
बाणा : कुशाश्च विलसन्ति करे सितायाः।
धारोज्ज्वलः परशुरेष कमण्डलुश्च,
तद्वीरशान्तरसयोः किमयं विकारः।

ही

कुस मुद्रिका समिधैं श्रुवा कुस औ कमंडल को लिये।
कटि मूल स्रौननि तर्कसी भृगुलात सी दरसै हिये।
धनु बान तिच्छ कुठार केसव मेखला मृगचर्म स्यों।
रघुवीर को यह देखिए रस वीर सात्विक धर्म स्यों।
(७ : १५)

के रूप में अनूदित हुआ है। मिथिला प्रवेश के समय के सूर्योदय वर्णन से लेकर सीता के राम को जयमाला पहनाने तक के वर्णन केशव ने 'प्रसन्नराघव' से ही ऋण लिये हैं। कुछ उदाहरण देखिए :

जनक-प्रशंसा–अंगैरंगीकृता यत्र पड्भि : सप्तभिरष्टभिः।
त्रयी च राज्यलक्ष्मीश्च योग विद्या च दीव्यति।

भरतागमन से लेकर चित्रकूट-प्रसंग की कथा वाल्मीकि तथा तुलसी की भाँति है, परन्तु 'भरत-कैकेयी-सम्वाद' 'हनुमन्नाटक' की छाया है। एक उदाहरण—

'मातस्तातः क्व यातः' 'सुरपतिभुवनं' 'हा कुतः' पुत्रशोकात्
'कोऽसौ' 'पुत्रश्चतुर्णां' 'त्वमवरजतया यस्य जातः किमस्य।
'प्राप्तोऽसौ काननान्तं' 'किमिति' 'नृपगिरा' 'किं तथासौ वभाषे'।
'मद्वाग्बद्धः' 'फलं ते किमिह' 'तव धराधीशता', 'हा हतोस्मि'।

अनुवाद—

मातु कहाँ नृप? तात गये सुरलोकहिं, क्यों सुतशोक लये।
सुत कौन सु? राम, कहाँ हैं अबै? बन लच्छन सीय समेत गये।
वन काज कहा कहि? केवल मो सुख, तोको कहा सुख यामें भये।
तुमको प्रभुता, धिक तोको कहा, अपराध बिना सिगरेई हये।
(१० : ४)

भरत का चित्रकूट-गमन रामायण के ही अनुसार है। केशव की मौलिक उद्भावना यहाँ रूठे भरत को समझाने के लिए भागीरथी का प्रकट होना है—

उठो हठी होउ न काज कीजै। कहै कछू राम सो मानि लीजै॥
अदोष तेरी सुत मातु सो है। सो कौन माया इनको न मोहै॥
(१० : ४२)

यहाँ राम-भरत के सहज स्नेह की व्यंजना न हो पाई। तुलसी की तूलिका ने ऐसे मार्मिक प्रसंग में भरत का अत्यन्त गौरवोज्ज्वल चित्र अंकित किया है। केशव के राम संशयालु और भरत दुराग्रही से वन गये हैं।

अरण्यकांड के पञ्चवटी-प्रसंग में फिर 'हनुमन्नाटक' आक्रामक हो गया है। स्वयम् पञ्चवटी का प्रसिद्ध वर्णन—

सब जाति फटी दुख की दुपटी, कपटी न रहै जहँ एक घटी।
निघटी रुचि मीच घटी हू घटी, जगजीवजतीन की छूटी तटी॥

'हनुमन्नाटक' के पंचवटी के वर्णन में लिखे वृत्तों की ही छाया है। शेष कथा रामायण और 'रामचरितमानस' के समानान्तर ही है। शूर्पणखा के 'कर्णनासाछेदन' प्रसंग में जहाँ तुलसी ने राक्षसी से भी प्रणय-प्रस्ताव करने में मर्यादा का ध्यान रखा है—

मम अनुरूप पुरुष जग माहीं।
देखउ खोजि लोक तिहुँ माहीं।
ताते अब लगि रही कुमारी।
मनमाना कछु तुमहिं निहारी।

वहाँ केशव ने उसे निर्लज्ज बना दिया है:

१. सुनिजै दुखमोचन पंकज लोचन।
अब मोहि करौ पतिनी मनरोचन।

२. राजकुमार रमौ सँग मेरे।

खर-दूषण-त्रिशरा वध, मारीच-मरण, सीता-हरण, जटायु-रावण युद्ध, राम का सीतान्वेषण, कबन्ध-वध आदि में 'रामचन्द्रिका' में कोई नई दिशा नहीं है। सीता-विलाप, राम की पञ्चकुटी पर शंका, आदि आदि 'हनुमन्नाटक' के हैं:

सीता का विलाप—'हा राम! हा रमन! हा रघुनाथवीर,
लंकाधिनाथ वश जानहुँ मोहिवीर।'

तो— 'हा राम हा रमण हा जगदेकवीर,
हा नाथ हा रघुपते किमुपेक्षसे माम्।'

की अनुकृति ही है।

'किष्किन्धाकाण्ड' में बालि-बध के प्रसंग में जहाँ तुलसी

बालि के 'कारन कवन नाथ मोहिं मारा ?' प्रश्न का उत्तर राम से लोकनीति से दिलाया है—

अनुजवधू भगिनी सुत नारी। सुन सठ कन्या सम ए चारी।
इनहिं कुदिष्टि विलोकइ जोई। ताइ बधे कछु पाप न होई।

वहाँ केशव ने राम से अपराध-स्वीकार कराया है—

सुनि बासव सुत बल बुधि निधान,
मैं शरणागत हित हते प्रान।
यह साँटौ लै कृष्णावतार,
तब ह्वै हो तुम संसार-पार। (१३ : ४)

इसी काण्ड में उत्तरीय-दर्शन के समय राम की उक्ति :

पंकज कै खंजरीट नैनन को केसोदास,
कैधौं मीन मानस को जलु है कि जारु है।
अंग को कि अंगराग गेंडुआ कि गलसुई,
किधौं कोट जीव ही को उर को कि हारु है।
बन्धन हमारो कामकेलि को, कि ताड़िबे को,
ताजनो विचार को, कि व्यंजन विचारु है।
मान की जमनिका कै कंजमुख मूँदिवै को,
सीता जू को उत्तरीय सब सुखसारु है।

तो 'हनुमन्नाटक' के छन्द—

द्यूते पणः प्रणय केलिषु कण्ठपाशः।
क्रीड़ा परिश्रमहरं व्यजनं रतान्ते।
शय्यानिशीथ समये जनकात्मजायाः
प्राप्तं मया विधिवशादिह चोत्तरीयम्।

का प्रवर्द्धन है।

सुन्दर कांड की कथा 'रामायण' और 'रामचरितमानस' से भिन्न नहीं है। अशोक-वाटिका में अशोक से सीता की अग्नि याचना और उसी समय हनुमान का मुद्रिका गिराना 'रामचन्द्रिका' में भी है परन्तु सीता और हनुमान का संवाद तथा मुद्रिका पर अनेक आलंकारिक उक्तियाँ 'प्रसन्नराघव' की हैं। 'रामचन्द्रिका' के रावण-हनुमान संवाद तथा अंगद-रावण संवाद पुनः 'हनुमन्नाटक' से अनुवादित या प्रभावित हैं। केशवदास में संवादों के अनुरूप वाग्विदग्धता और वाक्कौशल 'प्रसन्नराघव' और 'हनुमन्नाटक' से ही आया है।

लंकाकांड में यद्यपि लक्ष्मण को शक्ति लगने में 'अध्यात्म रामायण' का अनुकरण है जिसमें कुम्भकर्ण और मेघनाद के मरने से पूर्व ही रावण का लक्ष्मण पर शक्ति-प्रहार करना तथा सीता को विमान में लेजाकर राम-लक्ष्मण को नागपाश में बन्दी दिखाना रामायण का अनुकरण है फिर भी सारी कथा प्रायः एक-सी ही है। हाँ, रावण की ओर से राम के पास सन्धि-प्रस्ताव भेजा जाना केशव की मौलिकता है। महोदर नामक रावण का दूत 'हनुमन्नाटक' का अवतरण है। महोदर के द्वारा राम का वर्णन तो 'हनुमन्नाटक' में ज्यों का त्यों सुरक्षित है।

'रामचन्द्रिका' का उत्तरार्द्ध प्रायः रामराज्य के गुणानुवाद और और रामाश्वमेध यज्ञ से सम्बद्ध है। राम के विशद-वर्णित राजकार्य-प्रसंग में केशव ने गौण प्रसंग भी समाविष्ट कर दिये हैं परन्तु सबसे अधिक असंगत प्रसंग है उसका 'श्वान-संन्यासी-अभियोग'। इसी प्रकार 'सनाढ्यद्विजआगमन' भी असंगत है। केशव ने अपनी सनाढ्य-जाति को महत्त्व देने के लोभ में शत्रुघ्न से कहलायी है :

१. सनाढ्यवृत्ति जो हरै। सदा समूल सो जरै,
अकाल मृत्यु सो मरै। अनेक नर्क सो परै। (३४ : ५५)
२. सनाढ्य जाति सर्वदा। यथा पुनीत नर्मदा। (३४ : ५६)

यह ठीक है कि रामायण में भी ऋषियों का आगमन होता है पर केशव ने उन ऋषियों को सनाढ्य मान लेने की स्वतन्त्रता ग्रहण की है। ब्रह्मागमन और रामस्तुति भी केशव ने सनाढ्य-जाति का गौरव बताने के लिए ही आविष्कृत किये है।

सीता-निर्वासन में भी किंचित स्वतन्त्रता कवि ने ली है। वाल्मीकि की सीता ऋषि-मुनियों के तपोवनों में निवास करने की इच्छा से वाल्मीकि के आश्रम में पहुँचती हैं, परन्तु केशव की सीता मुनियों को वस्त्रदान करने की इच्छा से। इसी समय सीता के सम्बन्ध में कुछ लोकापवाद राम ने सुने और तुरंत सीता-त्याग का निश्चय कर लिया और भाइयों का विरोध करने पर भी उन्हें लक्ष्मण के साथ भेज दिया, जहाँ से वाल्मीकि उन्हें अपने आश्रम में ले गये। रामायण तथा अन्य ग्रन्थों में राम-सीता का यह वियोग पुनर्मिलन नहीं बनता और सीता पृथ्वी में समा जाती हैं। केशव ने लवकुश-युद्ध के उपरान्त राम-सीता का मिलन दिखाया है।

लवकुश-युद्ध 'रामचन्द्रिका' में 'हनुमन्नाटक' का ऋण है। अवश्य ही उसमें केशव ने अपनी कल्पना से लव-विभीषण-युद्ध लव सुग्रीव-युद्ध इत्यादि प्रसंग लव के शौर्य को और सुग्रीव तथा विभीषण दोनों के चारित्र्य पर अपनी आलोचना प्रस्तुत करने के लिए नियोजित किये हैं। उत्तरार्द्ध में ही विशेषतया केशव को अप्रासंगिक वर्णनों को जुटाने की गुंजाइश मिल सकी। इसी में उन्होंने रामराज्य के वर्णन के वहाने नीति-दर्शन, कला-धर्म इत्यादि के अतिरिक्त नखशिख-वर्णन करने

जलक्रीड़ा इत्यादि विलासमय जीवन के चित्र अंकित करने और राजपथों वन-उपवनों, महलों इत्यादि के शोभा-शृङ्गार पर अपना कवि-कौशल दिखाने का पूरा अवसर केशवदास ने पाया है।

इस प्रकार 'रामचन्द्रिका' में यदि वाल्मीकि-रामायण, 'प्रसन्नराघव' 'हनुमन्नाटक' और 'अध्यात्म रामायण' के ऋण को निकालदिया जाय तो केशव की निधि केवल राज्य के अंगोपांगों, नखशिख-वर्णन तथा लोकजीवन के सामान्य दृश्यों और पदार्थों का वर्णन ही कहा जायगा। केशवदास एक रीतिवादी, अलंकार-सम्प्रदायी, चमत्कारवादी कवि के रूप में ही ठहरते हैं। यह भी वाल्मीकि मुनि का आशीर्वाद और राम का प्रसाद है कि केशव राम के गायकों में तुलसीदास के अनुगामी बने और तुलसी के साथ आज उनका नाम स्मरण किया जाता है।

'रामचंद्रिका' की भाषा

जिस भाषा में सूर ने 'सूरसागर' गाया है उसी श्री-सम्पन्न ब्रजभाषा में केशवदास ने 'रामचन्द्रिका' की रचना की है। 'रामचन्द्रिका' में उन राम की कथा है जिनकी कथा संस्कृत, अपभ्रंश और अवधी में ही अभीतक गाई गई थी। ब्रजभाषा में रामकथा कहने का प्रथम महान प्रयत्न केशव का है। परन्तु केशव की ब्रजभाषा में एक विशेषता है। ब्रजभाषा स्वभावतया कोमल है। कोमल-कान्त पदावली जैसी ब्रजभाषा में है संसार की किसी भाषा में नहीं है। परन्तु केशव की भाषा में एक पौरुष और प्रखरता है। केशवदास संस्कृत-पंडित थे, भाषा में कविता करना उनके लिए अपमान की बात थी—

उपज्यो तेहिकुल मंदमति, शठ कवि केशवदास।
रामचन्द्र की चन्द्रिका, भाषा करी प्रकास॥

दूसरे उनके छन्द प्रायः वर्ण-वृत्त हैं सम्भवतः इन्हीं कारणों से कोमल कान्त पदावली का मोह वे न रख सके।

'रामचरितमानस' के कवि तुलसी ने भी संस्कृत का पुट दिया है परन्तु कम से कम। इसके विपरीत केशवदास की भाषा संस्कृत के भार से आक्रान्त है। कुछ उदाहरण देखिए—

(१) विचारमान ब्रह्म, देव अर्चमान मानिये।
अदीयमान दुःख, सुःख दीयमान जानिये।
अदंडमान दीन, गर्व दण्डमान भेद वै।
अपहृचमान पापग्रन्थ, पठ्यमान वेद वै। (३ : ३)

(२) सीता शोभन व्याह उत्सव सभा संसार संभावना।
तत्तत्कार्य समग्र व्यग्र मिथिलावासी जना शोभना।
राजा राज पुरोहितादि सुहृदा मंत्री महामंत्रदा।
नाना देश समागता नृपगणा पूज्यापरा सर्वदा।
(३ : १३)

केशव ने तुलसीदास की भाँति संस्कृत में कुछ श्लोक भी 'रामचन्द्रिका' में जड़े हैं :

रामचन्द्र पद पद्मम् वृन्दारकवृन्दाभिनन्दनीयम्,
केशवमतिभूतनया लोचनम् चंचरीकायते। (१ : १६)

इसके अतिरिक्त 'स्वलीलया', 'चलन्ति', 'लीलयैव', निजेच्छया, सुदेश, उरसि, शिरसि चतुर्धा जैसे संस्कृत के शब्दों का प्रयोग भी स्वच्छन्दतापूर्वक किया गया है। कहीं-कहीं संस्कृत की समास और संधि-पद्धति का भी आश्रय लिया गया है :

(१) मोहति मूढ़ अमूढ़ देव संगऽदिठि ज्यौं सोहै।
(२) राकसघालकता।
(३) ज्यु करी सुतभर्तृ-विना विनि जैसी।

बुन्देलखंडी प्रयोगों की भी 'रामचन्द्रिका' में प्रधानता है। कुछ शब्द तो ठेठ बुन्देलखंडी हैं जैसे उपदि (गुरुजनों की इच्छा के विपरीत), उरगन (अंगीकार करना) कुची (कुंजी), खारक (छुहारा), गलसुई (गाल के लगाने का छोटा तकिया) गेंडुआ (तकिया), गौरमदाइन (इन्द्रधनुष), चोली (पिटारी), ढूँकना (छिपकर ताकना), नारी (समूह), लाँच (रिश्वत) आदि। छन्द की गति के आग्रह से ब्रजभाषा के शब्द उन्हें विकृत करने पड़े हैं।

(१) भीम भाँति ताडुका सो भंग लागि करने आइ। (२ : ५)

(२) देवन गुण पख्यों, पुष्पन बर्ख्यों, हर्ख्यों अति सुरनाहु। (३ : १०)

केशवदास की भाषा में मुहावरों का प्रयोग तो है परन्तु लोकोक्तियों का नहीं जैसे—

१. कीन्हीं सो न कान।
२. भाँड भये उठि आसन ते। (हँसी कराना)
३. बोध घिसे बलवंत हुते।
४. स्वाद कहिवे को समर्थ न गूँग ज्यों गुर खाय।
५. हों बहुतै गुन मानिहौं तेरो।

भाषा के धर्मों में मौलिक धर्म है भाव-व्यंजना और भाव-व्यंजना के साधन हैं लक्षणा-व्यंजना शक्तियाँ, ध्वनियाँ तथा अलंकारों की योजना। केशव ने शक्तियों का प्रयोग प्रायः कम किया है। जहाँ भी ऐसा प्रयोग है प्रायः अनुकृत है। उनके ऐसे प्रयोगों में स्मरणीय हैं—

१. सागर कैसे तरयो ? जैसे गोपद,
काज कहा ? सिय चोरहिं देखो।

कैसे बँधायो ? जो सुन्दरि तेरी,
छुई दृग सोवत पातक लेखो। (१४ : १)

२. कौन के सुत ? बालि के,
वह कौन बालि ? न जानिये।
काँख चापि तुम्हें जो सागर-
सात न्हात बखानिये।
है कहाँ वह ? वीर अंगद-
देवलोक बताइयो।
क्यों गयो ? रघुनाथ बान-
विमान बैठि सिधाइयो। (१६ : ६)

३. भृगुकुल कमल दिनेश सुनु जीति सकल संसार।
क्यों चलिहै इन सिसुन पै डारत हौ जस भार॥
(७ : ३८)

इन अवतरणों में जो व्यंग्यार्थ-व्यंजना है उससे भाषा और भाव की सम्पन्नता की समुचित श्रीवृद्धि हुई है। कविगण प्रायः सरल उक्तियों में गहरा भाव छिपा देते हैं। तुलसीदास ऐसे प्रयोगों में सर्वोपरि हैं। सीता-सौन्दर्य का वर्णन करते समय उन्होंने प्रायः इसी परिपाटी का आश्रय लिया है।

परन्तु केशव का ऐसे उपायों पर स्वामित्व नहीं था जहाँ वे आन्तरिक भाव को शब्दों में बाँधने में असमर्थ रहते हैं वहाँ अनायास अपनी असफलता में पात्रों की कुछ चेष्टाएँ बता देते हैं और केशव की वह युक्ति बड़ी अनूठी हो जाती है। विश्वामित्र के साथ राम के विदा होते समय दशरथ की मार्मिक पीड़ा को

.... सजि मौनहिं।
केशव उठि गये भीतर भौनहिं॥ (२ : २७)

ं और चित्रकूट में दशरथ की रानियों की व्यथा को

तब पुत्र को जोय। क्रम ते उठीं सब रोय।

कवि ने सचमुच सफलतापूर्वक व्यंजित किया है।

केशव की भाषा में गुणों का यथोचित समावेश है। जहाँ शव को छन्दों की शृंखला ने नहीं बाँधा है वहाँ वे वस्तुतः ावानुरूप शब्द-रचना कर सके हैं। ओज और माधुर्य दो गुणों ो तो केशव ने भावानुरूप ही सृष्टि की है—

ओज

प्रथम टंकोर झुकि झारि संसार मद,
चंद कोदंड रह्यो मंडि नव खंड को।
चालि अचला अचल घालि दिग्पाल-बल,
पालि ऋषिराज के वचन परचंड को।
सोधु दै ईश को बोधु जगदीश को,
क्रोध उपजाय भृगुनंद बरिबंड को।
बाधिबर स्वर्ग को साधि अपवर्ग,
धनुभंग को शब्द गयो भेदि ब्रह्मंड को॥
(५:४२)

अज को अखर्व गर्व गंज्यो जेहि पर्वतारि,
जीत्यौ है सुपर्व सर्व भाजे लै लै अंगना।
खंडित अखंड आशु कीन्हों है जलेश पाशु,
चंदन सी चन्द्रिका सो कीन्हीं चंद-बन्दना।
दण्डक में कीन्हीं कालदण्ड हू को मानखण्ड,
मानों कीन्हीं काल ही की कालखण्ड-खण्डना।
'केशव' कोदण्ड विपदण्ड ऐसो खंडै अब,
मेरे भुजदण्डन की बड़ी है विडम्बना।
(४:६)

माधुर्य

तरु तालीस तमाल ताल हिंताल मनोहर,
मंजुल वंजुल लकुच वकुल कुल केर नारियर।
ऐला ललित लवंग संग पुंगी फल सोहै,
सारी शुककुल कलित चित्त कोकिल अलि मोहै।
शुभ राजहंस कलहंस कुल नाचत मत्त मयूरगन,
अति प्रफुलित फलित सदा रहै केशवदास विचित्रवन।।

परन्तु यह सब होते हुए भी केशव में क्लिष्टता अधिक है। इस क्लिष्टता का मूल कारण है उनका पांडित्य। केशवदास संस्कृत के हिन्दी भाषा में अप्रचलित शब्दों को आलंकारिक चमत्कार के आग्रह से अथवा सरल सहज भाव से, छन्द की लय के निर्वाह में अनेक स्थलों पर प्रयुक्त कर गये हैं, और उनमें प्रसाद गुण नहीं रह सका है। राजराज का श्रेष्ठ क्षत्रिय अर्थ सब जानते हैं परन्तु कुवेर केवल संस्कृतज्ञ। मनसाकर का कल्पवृक्ष और कामधेनु, सुरतरंगिणी का सरयू और गंगा, करुणाकर का विष्णु, सुखदायक का इन्द्र, विष का जल, वारुणी का पश्चिम दिशा, हंसक का बिछुए, तटी का समाधि अवस्था कुवलय का पृथ्वी मंडल, अर्जुन-भीम का ककुभ और अम्लवेत वृक्ष अर्थ पंडित लोग ही समझ पाते हैं। फलत :

१. पांडव की प्रतिमा सम लेखो। अर्जुन भीम महामति येखो।।
हे सुभगा सम दीपति पूरी। सिन्दुर औ तिलकावलि रूरी।

२. विषमय यह गोदावरी अमृतन के फल देति,
केशव जीवन हार को दुख अशेष हर लेति।।

३. भौंहे सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर,
भूखन जराय ज्योति तड़ित रलाई है।

केशवदास प्रबल करेनुका गमनरह,
मुकुत सुहंसक सबद सुखदाई है ॥

जैसे छन्दों के कारण ही केशवदास 'कठिन काव्य के प्रेत' कहे जाते हैं।

दोष

अप्रीततत्व दोष—केशवदास अनेक अप्रीततार्थ शब्दों का प्रयोग करने के कारण अप्रीततत्व दोष के भागी हुए हैं। जैसे—
'जगजीव जतीन की छूटी तटी' और : 'विषमय यह गोदावरी' में तटी और विप के प्रयोग।

च्युतसंस्कृत दोष—दूसरा दोप केशवकाव्य में च्युतसंस्कृति दोष है (व्याकरण सम्बन्धित त्रुटि) है—

१. पीछे मघवा मोहिं साप दई।
२. अंगद रक्षा रघुपति कीन्हों।
३. करैं साधना एक पर्लोक की।

अश्लील दोष—'रामचन्द्रिका' में अश्लीलत्व दोष भी कहीं-कहीं हैं जैसे—

१. क्रीड़ा व्यंजक
(क) श्रीफल को अभिलाप....
(ख) दिगपालन की भुवपालन की किनु मातु गई ज्वै
२. घृणा-व्यंजक
(क) वह रावरे पितु करी पत्नीनि तजी विप्रन थूंकि कै
(ख) विड़कन घन घूरे भच्छियों बाज जीवे।
(ग) केसनि ओरनि सीकर रमैं
(घ) मानो तिनको उगिलै बलस्यौं।
अत्तनि को तमई जनु वमैं

दुष्क्रमत्व दोष—अमानुषी भूमि अवानरी करौं (यहाँ अवानरी अमानुषी के पूर्व आना चाहिए था)

अधिक पदत्व दोष—तव स्वर्ण लंक महँ सोभ भई।
जनु अग्नि ज्वाल महँ धूम भई।

काल-विपर्यय दोष—(जहाँ इतिहास-विरुद्ध अर्थात् भविष्य की बात कही जाती है)

१. पांडव की प्रतिमा सम लेखो अर्जुन भीम महामति देखो।
२. सुभ गोदावरि तट विमल पंचवट बैठे होते मुरारि।

यहाँ 'पाण्डव', 'अर्जुन', 'भीम' 'मुरारी' (कृष्ण) आदि महाभारत-कालीन व्यक्तियों का नाम आना दोष है।

अक्रमत्व दोष—(जहाँ शब्दों का क्रम व्याकरण-विरुद्ध हो)

१. राज देहु दै वाकी तिया को।
२. अमानुषी भूमि अवानरी करौं!

कष्टार्थत्व दोष—(जहाँ शब्दों का अर्थ लगाने में कठिनाई हो)

दशमुख मुख जोवैं गजमुख मुख को।

'रामचंद्रिका' के छन्द

'रामचन्द्रिका' की रचना का उपक्रम करने के समय ही केशव कह चुके हैं:

रामचन्द्र की चन्द्रिका वर्णत हौं बहुछन्द।

'रामचन्द्रिका' वस्तुतः राशि-राशि छन्दों और वृत्तों का कोष है। प्रारम्भ में केशव ने एक वर्ण (अक्षर) का छन्द (श्री) लिखा है—

सी। धी। री। स्त्री।

तत्पश्चात् तीन वर्णों का छन्द 'रमण', चार का 'तरणिजा', पाँच का 'प्रिया', छः का 'सोमराजी', सात का 'कुमार ललिता' और आठ का 'नगस्वरूपिणी छन्द लिखा है। परन्तु आगे वे यह क्रम न निभा सके। फिर भी केशव ने इतने विविध छन्दों का प्रयोग किया है कि 'रामचन्द्रिका' को छन्द-शास्त्र के अध्ययन का पाठ्य-ग्रन्थ समझा जा सकता है। उनके प्रसिद्ध मात्रिक छन्द अरिल्ल, रोला, चतुष्पदी (चवपइ या याचौबोला) षट्पद (छप्पय) त्रिभंगी, प्रज्झटिका (पद्धरी या पद्धटिका) हरिगील हैं। केशव मात्रिक छन्दों के आविष्कारक भी हैं। चौपाई का विचित्र उदाहरण उन्होंने दिया है :

कछु राजत सूरज अरुनखरे। जनु लक्ष्मन के अनुराग भरे।
चितवत चित कुमुदिनी त्रसे। चोर चकोर चिता सी लसैं॥

केशव ने वर्णिक वृत्तों का अद्भुत प्रेम 'रामचन्द्रिका' में प्रदर्शित किया है। अमृतगति, कमला, कलहंस, कुसुमविचित्रा, कुमारललिता चामर, चंचरी, चंचला, चित्रपदा, डिल्ला, तरणिजा, तारक, तोमर, तोटक, तुरंगम, दोधक, नगस्वरूपिणी, निशिपालिका, नराच, पादाकुलक (शशिवदना), पंकजवाटिका, रमण, मल्ली, मन्थना, मालती, मदन मल्लिका, मधु, मोहन, विजय, शशिवदना, शार्दूलविक्रीड़ित, श्री, समानिका, सुगति, सुन्दरी, सुप्रिया सार, सोमराजी, स्वागत आदि आदि न जाने कितने वर्णिक वृत्त रामचन्द्रिका में प्रयुक्त हुए हैं और इनमें से अनेक छन्द तो केशव के ही आविष्कार हैं।

'रामचन्द्रिका' में छन्दों की विचित्र बहुरूपिणी विशालकाय सूची को देखकर केशव की छन्द-सृष्टि की प्रतिभा का अभिनन्दन करना पड़ता है। केशव को महान् छन्दशास्त्री का पद निर्विवाद और निर्विरोध रूप से दिया जा सकता है।

पूर्वगामी

और परवर्ती किसी कवि ने इतने विविध छन्दों का प्रयोग अपने काव्य में नहीं किया है।

इन छन्दों की सरल और वक्र, मन्द और क्षिप्र गतियों का प्रभाव 'रामचन्द्रिका' की भाव-काया पर भी पड़ा है। कहीं कहीं तो केशव ने भावों के आरोह-अवरोह के अनुरूप छन्द का नियोजन किया है परन्तु कहीं इसके विपरीत छन्द की प्रकृति ने उनके भावों को विकृत भी कर दिया है। पहले का उदाहरण है :

पढ़ौ विरंचि मौन वेद जीव सोर छंडि रे।
कुबेर बेर कै कही न जच्छ भीर मंडि रे।
दिनेश जाय दूरि बैठ नारदादि संगही।
न बोल चन्द्र मन्द बुद्धि इन्द्र की सभा नहीं।

और दूसरे का उदाहरण है :

हा राम ! हा रमन ! हा रघुनाथधीर।
लंकाधिनाथ वश जानहुँ मोहि वीर।
हा पुत्र, लक्ष्मण ! छुड़ावहि वेगि मोही।
मार्तंड वंश यश की सब लाज तोहीं। (१२ : ॰

'रामचन्द्रिका' और अन्य प्रबन्ध-काव्य

जायसी का 'पद्मावत', केशव की 'रामचन्द्रिका' अ तुलसीदास का 'रामचरित मानस' तीनों भक्तियुग के महाका हैं। 'पद्मावत' तथा 'रामचरितमानस' दोनों अवधी भाषा महाकाव्य हैं इस दृष्टि से एक श्रेणी में आते हैं। 'रामच मानस' और 'रामचन्द्रिका' राम जीवन से सम्बन्धित, र चरितात्मक प्रबन्धकाव्य हैं इसलिए ये दोनों भी एक दू कोटि के हैं।

'रामचरितमानस' और 'रामचन्द्रिका' दोनों प्रबन्ध-क

हैं और दोनों महाकाव्य। दोनों के नायक राम धीरोदात्त और दिव्य-गुणयुक्त क्षत्रियकुलोत्पन्न व्यक्ति हैं। दोनों में नायक का सम्पूर्ण जीवन वर्ण्य हुआ है। शृंगार, वीर, करुणा तीनों प्रधान रसों का दोनों में प्रभाव है। महाकाव्य के दूसरे गुण—जीवन के अनेक प्रसंगों, व्यापारों, नगरों, युद्धों, राज-सभा, राजप्रासाद, राजपथ, वन-उपवन, सरिता, सरोवर, गिरि, निर्झर आदि आदि के विशद वर्णन भी हैं और दोनों में कथावस्तु ६ से अधिक 'रामचरित मानस' में कांड और 'रामचन्द्रिका' में प्रकाश में फैली हुई है।

'रामचन्द्रिका' में प्रबन्ध की धारा कहीं शिथिल और कहीं वेगवती है। कभी-कभी तो ऐसा प्रतीत होने लगता है कि राम-जीवन के जो प्रसंग केशव को अधिक सरस और मनोरम प्रतीत हुए उनका विशदता से वर्णन करते हुए उन्होंने उन्हें संक्षिप्त कथासूत्रों से जोड़ दिया है, फलतः न तो नायक-नायिका और अन्य पात्रों की चरित्र-रेखायें सुस्पष्ट हो पाई हैं और न अधिक मर्मस्पर्शी प्रसंगों के साथ न्याय ही हो पाया है। रामचन्द्रिका प्रायः आलंकारिक शैली में लिखी हुई शत-शत छन्दों का संग्रहालय सी बन गई है।

'पद्मावत' और 'रामचन्द्रिका' की तुलना का उभयनिष्ठ आधार वर्ण्य और वर्णन-रीति ही हो सकते हैं। दोनों के भाव भिन्न और भाषा भिन्न है। 'पद्मावत' जायसी की एक महान अन्योक्ति (Allegory) है जिसमें कवि का उद्देश्य जीव की ब्रह्म-प्राप्ति की साधना का सूफी-मत-सम्मत प्रेम-मार्ग प्रशस्त करना है। 'पद्मावत' की प्रेमकथा द्वारा प्रेम-पीर की सृष्टि करना ही जायसी का अन्तिम मन्तव्य है—

१. प्रेमकथा यहि भाँति विचारहु
२. जेहि महँ मारग प्रेमकर सबै सराहै ताहि।
३. सुना सो पीर प्रेम कर पावा।

जायसी ने प्रेम मार्ग की प्रशस्ति करने के लिए, प्रेम की पीर उपजाने के लिए 'पद्मावत' प्रेम कथा की सृष्टि की है और एक लोक-प्रचलित आख्यान लेकर इतिहास में कल्पना का संयोग किया है। 'पद्मावत' के नायक रतनसेन और नायिका पद्मावती का शृंगार (प्रेम) संयोग और वियोग दोनों पक्षों में सफलता-पूर्वक चित्रित हुआ है। प्रेम के अतिरिक्त दूसरे जीवन में झांकने का जायसी को न अवकाश था, न आवश्यकता। हाँ, पद्मावती का सतीत्व और अन्तिम प्राणोत्सर्ग तथा उन्होंने जिस इतिहास का आश्रय लिया उसके आग्रह से उन्हें रतनसेन और अलाउद्दीन का युद्ध भी दिखाना पड़ा है और इस प्रकार अलाउद्दीन को जीव और ब्रह्म की प्रेम-साधना के मार्ग में आनेवाली माया कह दिया है। यदि कवि चाहता तो इतिहास का पूर्ण विकास भी हो सकता था। उस दशा में 'माया' के लिए किसी और पात्र की सृष्टि करनी पड़ती। अलाउद्दीन को माया बतला कर तो जायसी ने अन्त में माया की ही विजय दिखाई है और इस प्रकार प्रेम-साधना की विजय दिखाने का उनका उद्देश्य असफल हो जाता है।

'रामचन्द्रिका' में कवि का उद्देश्य राम-जीवन में झाँकना मात्र है। उनके शब्दों में उन्होंने विविध छन्दों में रामचन्द्र की चन्द्रिका ही वर्णित की है: 'रामचन्द्रकी चन्द्रिकावर्णत हौं बहुछंद' वर्ण्य वस्तु के आविष्कार के लिए उन्हें कोई श्रम नहीं करना पड़ा। वाल्मीकि रामायण, 'अध्यात्म रामायण' हनुमन्नाटक और प्रसन्नराघव संस्कृत में 'स्वयम्भू रामायण' अपभ्रंश में और 'रामचरितमानस' अवधी में राम-जीवन को विविध दृष्टिकोणों से विविधरूपों में चित्रित कर चुके थे। अपनी कथा-वस्तु को उन्होंने अपनी रुचि के अनुकूल इन्हीं काव्यों में से ग्रहण किया है।

वर्णन-रीति की दृष्टि से 'पद्मावत' और 'रामचन्द्रिका' में पर्याप्त भेद है। यह अन्तर वर्ण्य विषय के आग्रह से स्वभावतः ही हो गया है। एक और कारण इस भेद का यह है कि 'पदमावत' का कवि 'पद्मावत' में अपनी आध्यात्मिक दृष्टि को प्रदर्शित करना चाहता है परन्तु 'रामचन्द्रिका' के कवि की दृष्टि तो केवल वर्णनात्मक है। उन्हें न तो राम के सम्पूर्ण जीवन को उसके छोटे से छोटे और बड़े से बड़े प्रसंग में देखना है और न उसके द्वारा कोई विशेष धार्मिक दृष्टि प्रस्तुत करनी है। 'रामचरितमानस' के कवि की भाँति केशव ने नार्य और अनार्य जाति के संघर्ष को प्रस्तुत किया है और न एक मृतप्राय जाति में प्राण फूँकने का महान कार्य ही किया है। 'रामचन्द्रिका' में तो राम-जीवन के कुछ प्रसंगों के चित्रों का चामत्कारिक वर्णन है। कवि के पास जो वर्णन की आलंकारिक क्षमता है उसके लिए उन्होंने राजसभा, विवाह, युद्ध, राजनीति और रामराज्य-प्रशस्ति आदि के विषयों पर अधिक ममता दिखाई है। इन्हीं वर्णनों में केशव की सफलता है जो उन्हें कुशल चमत्कारवादी कवि सिद्ध करती है और इसी में उनकी असफलता है जो उसे एक असफल महाकाव्यकार घोषित करती है। 'पद्मावत' के रतनसेन और पद्मावती के प्रेम की व्यंजना में जो अलौकिकता और कहीं कहीं अस्वाभाविकता प्रतीत होती है वह उनकी आध्यात्मिक दृष्टि के कारण है अन्यथा रतनसेन, पद्मावती और नागमती के चरित्रों का अच्छा विकास उन्होंने दिखाया है। नागमती और पद्मावती के पति-प्रेम में इतना सूक्ष्म तात्विक अन्तर है कि साधारण पाठक की दृष्टि में पद्मावती से नागमती का प्रेम उत्कृष्ट जान पड़ने लगता है। कथा में कई स्थलों पर जायसी ने अपने पात्रों के विभिन्न चरित्रों को दास रूप में अंकित किया है। 'रामचन्द्रिका' के चरित्रों में सामान्यतया

राम-चरित के चरित्रों से भिन्नता नहीं है। राम केशव के लिए भी देवरूप हैं, विष्णु के अवतार हैं। विश्वामित्र के तपोवन में राक्षसों को मारने में, धनुष तोड़ने में, मारीच-वध; सीताहरण, वालि-वध और रावण-वध प्रसंगों में उनका अलौकिक देवत्व प्रकट होता है। परन्तु तुलसीदास ने उन्हें अधिक मानवीय बनाया है और मर्य्यादा पुरुषोत्तम की रूपरेखा उन्हें दी है। केशव में राम की भक्ति तुलसीदास के भाँति अनन्य नहीं है। इस कारण केशव के राम कभी कभी सामान्य मानव की कोटि में आ जाते हैं जैसे सीता के उत्तरीय को देखने के समय। इस प्रकार चरित्र-चित्रण में असंगति आगई है। 'रामचन्द्रिका' के कौशल्या, कैकेयी आदि अन्य चरित्र भी हीन-कोटि के हो गये हैं।

भाव-व्यंजना में जायसी की समता केशव नहीं कर सकते। जायसी में प्रेम-वर्णन की उत्कटता उनके प्रेमपूर्ण सूफी हृदय के कारण आगयी है। ठेठ ग्रामीण भाषा में भी इसीलिए वे रस घोल सके हैं। भाव-चित्रण में अलौकिकता के संकेत द्वारा कभी-कभी अतिरंजन दिखाई देता है जैसे रतनसेन और पद्मावती की विरह-दिशाओं में और नागमती की वियोग-दशा में। 'पद्मावत' की असंगतियाँ एक कथा पर आध्यात्मिक रंग चढ़ाने के कारण आयी हैं। जायसी अपने समस्त संचित ज्ञान को, चाहे वह लौकिक हो अथवा आध्यात्मिक, अपनी कथा में समाविष्ट करना चाहते हैं जैसे शकुन-विचार, विभिन्न वृक्ष-वनस्पति, स्त्री-भेदों, भोजन के व्यंजनों आदि के व्यंजनों आदि के वर्णन इनको शून्य कर देने पर 'पद्मावत' की कथा एक सरस प्रेम-कथा रह जाती है और भावात्मक दृष्टि से जायसी तुलसी से कम नहीं ठहरते और केशव से भी बहुत ऊँचे स्थान पर पहुँचते हैं।

शुद्धि-पत्र

पुस्तक में मुद्रण की अनेक भूलों में से निम्नलिखित सबसे अधिक चिन्तनीय हैं। पाठकगण कृपया सुधार लें:—

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	२	उडगन	उडुगन
	५	अनुप्रास	यमक
४	१	बावनी	'रतन-बावनी'
७	५	मुनि ने वे	मुनि ने
१०	१४	स्रोतस्वि	स्रोतस्विनी
	१७	संगीत	संगति
१६	६	शिष्ठचारों	शिष्टाचारों
१८	१६	गण्डक	दण्डक
२३	२३	'चित्रविधान के अनंतर अंतिम पंक्ति से (imagery) पढ़िए।	
२८	१०	अप्रतितम	अप्रतिम
३३	१०	आम	काम—
३५	२	वाग्वैददग्ध्य	वाग्वैदग्ध्य
४७	१४	करुण	करुणा
४६	२४	ज्ञेय	देव
	११	राभ	राम
	२२	अनसूत्रा	अनसूया
५०	५	क्री व्यंजना	की व्यंजना
५१	१२	सत्तय	सत्तम
	७	नुपूरक	नूपुरक
५६	१८	पिकनाक	पिनाक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५७	३	विजय–	विनय–
६२	५	उपालम	उपालम्भ-
६५	२५	'स्वयम्	'स्वयम्भू
६७	१६	निर्वीमुर्वीरतलम्	निर्वीरमुर्वीतलम्
१०५	२०	और और	और
११२	१०	मापा	भाषा
११३	६	अप्रीतत्व	अप्रतीतत्व
		अप्रीततार्थ	अप्रतीतार्थ
	७	अप्रीततत्व	अप्रतीतत्व
११३	१०	च्युत संस्कृत	च्युत संस्कृति
	१७	क्रीड़ा	व्रीड़ा
११८	१३	अरौ	और
११६	६	नार्य	न आर्य
	२६	दात्त	उदात्त
१२०	७	के भाँति अनन्त्य	की भाँति अनन्य
		'व्यंजनों आदि के'	कटा समझें

इनके अतिरिक्त उद्धरणों में कई स्थलों पर अशुद्धियाँ रह गई हैं। पाठक कृपया मूल से उन्हें शुद्ध कर लें।